इस्लाम

मानवतापूर्ण ईश्वरीय धर्म

लेखक
लाला काशी राम चावला

सांप्रदायिक सद्‌भाव एवं राष्ट्रीय एकता हेतु प्रकाशित

इस्लाम
मानवतापूर्ण ईश्वरीय धर्म

लेखक

लाला काशी राम चावला

अनुवादक

मुहम्मद क़मरुद्दीन

मधुर सन्देश संगम

E-20, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिआ नगर, नई दिल्ली-110025

संदेश सीरीज़

ISLAM MANAVTAPURN ISHWARIYA DHARM (Hindi)

मधुर संदेश संगम प्रकाशन (रजि॰ ट्रस्ट)

प्रकाशक : मधुर संदेश संगम

E-20, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली - 110025

दूरभाष : 26925156

मिलने का अन्य पता :

मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स

D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली - 110025
दूरभाष : 26911652, 26317858

संस्करण : अगस्त, 2003 ई॰
दिसम्बर, 2003 ई॰
जून 2004 ई॰

मूल्य : 20.00

मुद्रक : न्यू इंण्डिया ऑफसेट प्रिन्टर्स, दिल्ली-6

विषय सूची

प्रस्तावना	4
लेखक का परिचय	5
सांकेतिक शब्दार्थ	6
इस्लाम क्या है?	7
पहला उद्देश्य : पशु से मानव बनाना	7
दूसरा उद्देश्य : मानव को वास्तविक मानव बनाना	8
तीसरा उद्देश्य : वास्तविक मानव को ईश्वर प्रिय बनाना	9
इस्लाम का अभ्युदय क्यों हुआ?	13
इस्लाम का अर्थ है शान्ति	17
मुसलमान कौन है?	20
इस्लाम का आधार नैतिकता एवं सदाचार	23
न्यायप्रियता	28
क्षमाशीलता	32
इस्लाम में पड़ोसी के अधिकार	41
इस्लाम में पवित्र कमाई का महत्व	46
धार्मिक पथ-प्रदर्शक के गुण	50
अपने धर्मवालों से निवेदन	55

प्रस्तावना

श्री लाला काशी राम चावला पंजाब के रहने वाले थे, अंग्रेज़ी शासनकाल में डिप्टी कमिश्नर लुधियाना के कार्यालय में सुपरिंटेंडेंट थे। आप मानवता प्रेमी थे। आपने बहुत-सी किताबें लिखी हैं और जिस उर्दू किताब का यह अनुवाद और संक्षिप्तिकरण है उसका नाम है— "ऐ मुस्लिम भाई!" आपकी 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। ये हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, गुरुमुखी हर भाषा में हैं। आपके दिल में इंसानियत का सच्चा दर्द था, आप सभी मनुष्यों को भाई-भाई के समान देखने के इच्छुक थे। आपकी सारी पुस्तकें इसी उद्देश्य से लिखी गई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक अपने विषय पर किसी ग़ैर-मुस्लिम विद्वान द्वारा लिखी गई अद्वितीय पुस्तक है। आशा है, ऐसे हिन्दी भाषा-भाषी, जो हर धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हों, इस पुस्तक से अवश्य लाभ उठाएंगे।

—प्रकाशक

लेखक का परिचय

अपना परिचय ख़ुद देते हुए एक जगह पर श्री लाला काशी राम लिखते हैं—

"यह सत्य है कि मैं अपने आपको मुसलमान नहीं कहता और जनगणना के समय भी अपने आपको मुसलमान नहीं लिखवाता, परन्तु इस बात का मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इस्लाम धर्म की पवित्र शिक्षाओं का प्रशंसक हूँ। कुरआन पाक को मैंने कई बार "बिस्मिल्लाह" से "वन्नास" (शुरू से अन्त) तक मूल अरबी में अर्थ के साथ पढ़ा है। बहुत ज़माने तक उसकी प्रतिदिन तिलावत (पाठ) करता रहा। अब भी प्राय: वे आयतें जिन्होंने मेरे दिल को प्रभावित किया है, पढ़ता रहता हूँ। रसूले करीम (सल्ल०) की बहुत-सी हदीसों और हज़रत की सीरते अतहर (पवित्र-जीवनी) का भी भली-भांति अध्ययन किया है और उसको अपने लिए जीवन का पथप्रदर्शक समझता हूँ। न केवल ज़बानी, बल्कि पवित्र क़ुरआन की शिक्षाओं और रसूले पाक के आदेशों को अपने जीवन में कार्यान्वित करने की चेष्टा करता हूँ और यह कोई गर्व की या असाधारण बात नहीं; ऐसे व्यक्ति को, जो इंसान कहलाने का इच्छुक हो, ऐसा करना ही चाहिए।"

मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए, विशेष रूप से वे कहते हैं—"ऐ मेरे भाई! इस्लाम धर्म सचमुच एक महान् धर्म है; वह संसार में सुख-शान्ति का राज स्थापित करने के लिए आया है, आपका इस्लाम धर्म पर गर्व करना उचित है; आप इस बात पर नाज़ करते हैं कि इस्लाम धर्म सारी दुनिया के लिए जीवन-पथप्रदर्शक है; उसका दर्शन उच्च है और उसकी शिक्षा ग्रहण करने योग्य है, लेकिन इस्लाम की महानता की गरिमा आपको उस वक़्त तक कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती जब तक आप उसे अपने जीवन में कार्यान्वित नहीं करेंगे।"

सांकेतिक शब्दार्थ

संक्षिप्त रूप में इस्तेमाल कुछ ऐसे शब्द इस किताब में आएँगे, जिनकी मुकम्मल शक्ल और मतलब किताब के अध्ययन से पहले जान लेना ज़रूरी है, ताकि अध्ययन के दौरान कोई परेशानी न हो। वे शब्द ये हैं :

अलै० या अलैहि० : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **'अलैहिस्सलाम'** यानी 'उन पर सलामती हो!' नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ यह आदर और प्रेम सूचक दुआ बढ़ा देते हैं।

रज़ि० : इसका पूर्ण रूप है, **'रज़ियल्लाहु अन्हु'** इसके मायने हैं, 'अल्लाह उनसे राज़ी हो!' **सहाबी** के नाम के साथ यह आदर और प्रेम सूचक दुआ बढ़ा देते हैं।

'सहाबी' उस ख़ुश क़िस्मत मुसलमान को कहते हैं, जिसे नबी (सल्ल०) से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। सहाबी का बहुवचन **सहाबा** है और स्त्रीलिंग **सहाबियः** है।

रज़ि० अगर किसी **सहाबियः** के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हा** पढ़ते हैं और अगर सहाबा के लिए आए तो **रज़ियल्लाहु अन्हुम** कहते हैं।

सल्ल० : इसका पूर्ण रूप है, **'सल-लल-लाहु अलैहि व सल्लम'** जिसका मतलब है, 'अल्लाह उन पर रहमत और सलामती की बारिश करे' हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो आदर और प्रेम के लिए दुआ के ये शब्द बढ़ा देते हैं।

इस्लाम क्या है?

'इस्लाम' का अर्थ है — सुख-शान्ति, शुभकामना, झुकना, आज्ञापालन, अनुसरण, नम्रता; और 'दीन' कहते हैं— मार्ग एवं धर्म को। इसलिए 'दीने इस्लाम' का अर्थ हुआ— वह मार्ग जिसपर चलने से मनुष्य नम्रतापूर्वक सुख-शान्ति का शुभेच्छु बन जाए और ईश्वर के सामने अपने आप को झुका दे।

पवित्र क़ुरआन में इस्लाम की महानता के सम्बन्ध में जो वाक्य आया है, वह इस प्रकार है—

अल् यौ-म अक्मल्तु लकुम दी-नकुम व अत्मम्तु अलैकुम नेअ्-मती, व रज़ीतु लकुमुल् इस्ला-म दीना। —क़ुरआन, 5:3

> अर्थात् : आज के दिन तुम्हारे लिए तुम्हारे धर्म को मैंने पूर्ण कर दिया और मैंने तुमपर अपनी कृपा पूरी कर दी और मैंने तुम्हारे लिए इस्लाम धर्म को पसन्द किया।

धर्म के तीन उद्देश्य होते हैं—प्रथम उद्देश्य यह है कि मनुष्यों को पाश्विकता और उद्दण्डता के गर्त से निकालकर मनुष्य बनाना, फिर उनको पवित्र सदाचार सिखाकर सर्वगुण सम्पन्न मानव बनाना और तीसरे यह कि उनके अन्तर में उच्च भाव उत्पन्न करके उनको देवताओं के समान बनाकर अपने रब से मिलन के योग्य बनाना। मुस्लिम विद्वानों ने भी इस्लाम के यही तीन उद्देश्य बताए हैं। इन तीनों उद्देश्यों के सम्बन्ध में पवित्र क़ुरआन में जो कुछ बताया गया है, वह निम्नलिखित है—

पहला उद्देश्य : पशु से मानव बनाना

(1) ऐ मुसलमानो! तुम अपने घरों के अतिरिक्त किसी अन्य मकान में उस समय तक न प्रवेश करो, जब तक अनुमति न ले लो और उनमें रहनेवालों को सलाम न कर लो। यही तुम्हारे लिए उचित है और तुम इसका विचार कर लिया करो। यदि उन घरों में कोई आदमी मालूम न हो तो उन घरों में न जाओ, जब तक कि तुमको अनुमति न दी जाए और यदि तुम से कह दिया जाए कि लौट जाओ तो तुम लौट आया करो। यही बात तुम्हारे लिए

उचित है और ईश्वर को तुम्हारे सारे कार्यों का पता है। —कुरआन, 24:27-28

(2) ऐ नबी! ईमानवाले पुरुषों से कहो कि अपनी निगाहें नीची रखें और अपने गुप्तांगों (शर्मगाहों) की रक्षा करें। यह उनके लिए अधिक शुद्धता की बात है। निस्संदेह, अल्लाह उसकी ख़बर रखता है जो कुछ वे करते हैं। —कुरआन, 24:30

(3) और लोगों से मुंह फेरकर बात न कर और न धरती में अकड़कर चल। निस्संदेह, किसी अहंकारी और अपने मुंह अपनी प्रशंसा करनेवाले को अल्लाह पसन्द नहीं करता। अपनी चाल बीच की रख और अपनी आवाज़ को पस्त रख। निश्चय ही सब आवाज़ों में सबसे बुरी आवाज़ गधों की होती है। —कुरआन, 18:19

(4) निन्दनीय तो वे हैं, जो दूसरों पर ज़ुल्म करते हैं और धरती में नाहक़ उपद्रव मचाते हैं। ऐसे ही लोगों के लिए दुःखदायिनी यातना है। —कुरआन, 42:42

(5) ईश्वर से डरो और निरर्थक बकवास से बचो और बात ठीक कहो।

—कुरआन, 33:70

(6) अत्याचारियों के पास यदि दुनिया-भर की वस्तुएं हों और उन वस्तुओं के साथ उतनी और भी हों तो वे लोग प्रलय के दिन कड़ी यातना से छूट जाने के लिए उन्हें देने लगें, फिर भी ईश्वर की ओर से उनको ऐसी घटना का सामना करना पड़ेगा जिनकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। —कुरआन, 29:47

दूसरा उद्देश्य : मानव को वास्तविक मानव बनाना

(1) ऐ ईमानवालो! तुम शैतान का अनुकरण न करो और जो व्यक्ति शैतान का अनुकरण करेगा तो वह उसे अश्लीलता और बुराई का ही आदेश देगा।—कुरआन, 24:21

(2) और हमने हर मनुष्य के कर्म को उसके गले का हार बना रखा है और प्रलय के दिन हम उसका कर्म-पत्र निकालकर उसके सामने रख देंगे, जिसको वह खुला हुआ देख लेगा और वह अपना कर्म-पत्र पढ़ लेगा तो उससे कहा जाएगा, आज तू स्वयं अपना हिसाब करने के लिए काफ़ी है। जो व्यक्ति सीधे मार्ग पर चलता है, वह अपने ही लाभ के लिए चलता है और जो कुमार्ग पर चलता है तो अपनी ही हानि के लिए चलता है और कोई व्यक्ति किसी का बोझ न उठाएगा। —कुरआन, 16:13-15

(3) ऐ ईमानवालो! परस्पर एक-दूसरे का धन अवैध रूप से न खाओ। हां, यदि कोई व्यापार हो या आपस में संधि हो तो कोई बात नहीं और तुम एक-दूसरे की हत्या न

करो। —क़ुरआन, 4:29

(4) ईश्वर अमानत में ख़ियानत करनेवालों को पसन्द नहीं करता।
—क़ुरआन, 8:27

(5) ऐ ईमानवालो ! किसी (विशेष) जाति की शत्रुता तुम्हारे लिए इस बात का कारण न बन जाए कि तुम न्याय न कर सको। (तुम न्याय किया करो कि) वह संयम से अधिक निकट है और ईश्वर से डरो। निस्सन्देह, ईश्वर को तुम्हारे सभी कार्यों की पूरी सूचना है। —क़ुरआन, 5:8

(6) और यदि वे संधि की ओर झुकें तो आप भी उस ओर झुक जाएँ और ईश्वर पर भरोसा रखें। —क़ुरआन, 8:61

(7) और जो लोग ईश्वर के सम्मुख की हुई सन्धियों को दृढ़ करने के बाद तोड़ देते हैं और ईश्वर ने जिन सम्बन्धों को जोड़े रखने का आदेश दिया है, उनको भी तोड़ देते हैं और धरती पर उपद्रव मचाते हैं, ऐसे लोगों पर ईश्वर की फटकार होगी और उनके लिए लोक और परलोक दोनों में विनाश-ही-विनाश है। —क़ुरआन, 13:25

(8) और दुनिया में सुधार के पश्चात् उपद्रव न फैलाओ, और तुम ईश्वर की उपासना उससे डरते हुए और उम्मीद रखते हुए किया करो। निस्सन्देह, ईश्वर की कृपा सुकर्म करनेवालों के निकट है। —क़ुरआन, 7:56

(9) अल्लाह के चमत्कारों को याद रखो और धरती में बिगाड़ उत्पन्न न करो।
—क़ुरआन, 6:74

(10) ये लोग ईश्वर को छोड़कर जिनकी उपासना करते हैं उनको गाली न दो, क्योंकि अज्ञानता के कारण सीमा से गुज़रकर वे ईश्वर के सम्बन्ध में भी धृष्टता करने लगेंगे। —क़ुरआन, 6:108

तीसरा उद्देश्य : वास्तविक मानव को ईश्वर प्रिय बनाना

(1) तुम ईश्वर की उपासना किया करो और उसके साथ किसी को सम्मिलित न करो और माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करो और सगे सम्बन्धियों, अनाथों और दीन-दुखियों के साथ भी और निकट एवं दूर के पड़ोसियों के साथ भी और साथ उठने-बैठनेवालों और यात्रियों के साथ भी और अपने दास-दासियों के साथ भी; निस्संदेह, ईश्वर

ऐसे लोगों को प्रिय नहीं रखता, जो अपने आपको बड़ा समझते हैं और डींग हांकते हैं।
—क़ुरआन, 4:36

(2) और, ऐ पैग़म्बर ! जो लोग ईमान ले आएं और अच्छे कर्म करें, उन्हें यह शुभ सूचना दे दो कि उनके लिए (स्वर्ग में) ऐसे बाग़ हैं, जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी। जब-जब इन बागों में से कोई फल इन्हें खाने को दिया जाएगा तो कहेंगे कि ऐसे ही फल इससे पहले दुनिया में हमको दिए जाते थे। उनके लिए वहाँ निर्मला पत्नियां होंगी और वे वहाँ हमेशा रहेंगे।
—क़ुरआन, 2:25

(3) ऐ नबी! उनसे कह दो कि श्रेष्ठता और बड़ाई तो अल्लाह के हाथ में है; जिसे चाहता है प्रदान करता है। अल्लाह बहुत समाईवाला है और सब कुछ जानता है। वह जिसे चाहता है अपनी दयालुता के लिए ख़ास कर लेता है। उसकी उदारता और अनुकम्पा बहुत बड़ी है।
—क़ुरआन, 3:73-74

(4) (ईश्वर के अवज्ञाकारी) ये वे लोग हैं कि इन्होंने परलोक के बदले इस लोक को ख़रीद लिया है। अत: न इनके दण्ड में कमी की जाएगी और न कोई इनकी सहायता कर पाएगा।
—क़ुरआन, 2:86

(5) धन और सन्तान सांसारिक जीवन की शोभा है। वस्तुत: बाक़ी रह जानेवाली नेकियां ही तेरे प्रभु के यहां परिणाम की दृष्टि से उत्तम हैं और उन्हीं से अच्छी आशाएं जोड़ी जा सकती हैं।
—क़ुरआन, 18:46

(6) ऐ नबी! तुम स्पष्ट रूप से कह दो कि मुझे तो बस यह हुक्म दिया गया है कि मैं अल्लाह की इबादत (उपासना) करूं और उसके साथ किसी को साझी न ठहराऊं। मैं उसी की ओर बुलाता हूँ और उसी की ओर मुझे लौटना है।
—क़ुरआन, 13:33

(7) ईश्वर जिसको चाहता है अधिक जीविका देता है और जिसे चाहता है कम देता है और ये लोग पारलौकिक जीवन के मुक़ाबले में सांसारिक जीवन पर इतराते हैं, जबकि सांसारिक जीवन परलोक की अपेक्षा अल्प सुख-सामग्री के अलावा कुछ नहीं है।
—क़ुरआन, 13:26

(8) सदा नमाज़ क़ायम करो और ज़कात (धर्मदान) देते रहो और तुम अपने लिए जो भलाई कमा कर आगे जाओगे, उसे अल्लाह के पास पाओगे; क्योंकि वह तुम्हारे सभी कार्यों को देख रहा है।
—क़ुरआन, 2:110

(9) ऐ लोगो! अपने पालनहार से डरो और उस दिन से जब न कोई बाप अपने बेटे

की ओर से कोई तावान (बदला) अदा कर सकेगा और न कोई बेटा ही अपने बाप की तरफ़ से तावान (बदला) अदा करेगा। निस्सन्देह ईश्वर का वादा सच्चा है। अतः तुमको यह सांसारिक जीवन धोखे में न डाले और न तुमको धोखेबाज़ शैतान धोखे में डाले।

—कुरआन, 31:33

(10) यदि ईश्वर को स्वीकार न होता तो वे लोग किसी को उसके साथ सम्मिलित न करते और हमने (ऐ सन्देष्टा !) तुम्हें उनका निरीक्षक नहीं बनाया और न तुम उनपर कुछ अधिकार रखते हो। —कुरआन, 6:107

(11) (ऐ सन्देष्टा !) यदि ये तुम्हें झुठलाते रहें तो कह दो कि मेरा किया-धरा मुझको मिलेगा और तुम्हारा किया-धरा तुमको मिलेगा। न तुम मेरे कार्यों के उत्तरदायी हो और न मैं तुम्हारे कार्यों का उत्तरदायी हूँ। —कुरआन, 10:41

(12) और यदि तेरा रब चाहता तो धरती में जितने लोग हैं, सबके सब ईमान ले आते, फिर क्या तू लोगों को विवश करेगा कि वे ईमानवाले हो जाएं? कोई जीव बिना ईश्वर के हुक्म के ईमान नहीं ला सकता और वह उन लोगों पर (कुफ्र और शिर्क) की गन्दगी डाल देता है, जो बुद्धि से काम नहीं लेते। —कुरआन, 10:99-100

(13) तुम अपने पालनहार की ओर ज्ञान की बातों और भली बातों के द्वारा बुलाओ और उनसे भले ढंग से वार्तालाप करो। निस्सन्देह, तुम्हारा रब (पालनहार) उस व्यक्ति को भली-भांति जानता है, जो उसके मार्ग से भटक गया और मार्ग पर चलनेवालों को भी भली-भांति जानता है। —कुरआन, 16:125

(14) ईमानवाले तो ऐसे होते हैं कि जब ईश्वर का वर्णन आता है तो उनके दिल काँप उठते हैं और जब ईश्वर की वाणी उनको पढ़ कर सुनाई जाती है तो वह उनके ईमान को अधिक मज़बूत बना देती है और वे अपने रब (पालनहार) पर भरोसा रखते हैं।

—कुरआन, 8:2

(15) और उस रहमान (कृपाशील) के (वास्तविक बन्दे) वह हैं जो धरती पर नम्रता के साथ चलते हैं और जब उनसे मूर्ख लोग बात करते हैं तो वे (उनसे उलझते नहीं और) कह देते हैं कि तुमको सलाम। —कुरआन, 25:63

(16) ऐ लोगो! जो वस्तुएं धरती पर मौजूद हैं, उनमें से हलाल (शुद्ध) और पवित्र वस्तुओं को खाओ और शैतान का अनुसरण न करो। वह तुम्हारा खुला दुश्मन है।

—कुरआन, 2:168

(17) कोई व्यक्ति किसी का पाप अपने ऊपर नहीं ले सकता। प्रत्येक मनुष्य को केवल अपनी ही कमाई मिलेगी और मनुष्य की चेष्टा बहुत जल्द देखी जाएगी, फिर उसको पूरा बदला दिया जाएगा और हर एक को अपने रब (पालनहार) के पास पहुँचना है। —क़ुरआन, 53:38-42

यह है इस्लाम और उसकी शिक्षा !

ऐ मुस्लिम भाइयो! अब हम तनिक ठहर कर सोचें कि हमने इस धर्म का कहां तक अनुसरण किया है, कहां तक इसपर चलकर हम किस श्रेणी तक पहुंचे हैं, कहीं ऐसा तो नहीं कि हम इस राजमार्ग पर अभी खड़े भी न हुए हों और उद्दण्डता (सरकशी) और अज्ञानता (नासमझी) के जंगल में ही भटक रहे हों; यदि ऐसी बात है तो निस्सन्देह इस धर्म को हम कलंकित कर रहे हैं; अपने आपको उसका अनुयायी कह कर हम उसको बदनाम कर रहे हैं।

हम इस बात का एलान करते हैं कि हमारे धर्म की शिक्षा सर्वोत्तम है। इसके बावजूद हमारे जीवन-यापन का ढंग वह है, जो पहली सीढ़ी से भी बुरा है और हम इस सीढ़ी पर अभी पैर भी नहीं रख पाए हैं तो क्या हम इस्लाम के लिए कलंक का कारण नहीं बन रहे हैं?

इस्लाम का अभ्युदय क्यों हुआ?

यह एक अटल प्राकृतिक नियम है कि जब पाप की अधिकता हो जाती है; अत्याचार और हिंसा करनेवालों की संख्या बढ़ जाती है; नेक और पवित्र मनुष्य सताए जाने लगते हैं; ख़ुदा के बन्दे पुण्य के रास्ते से हटकर पाप के रास्ते पर चलने लगते हैं; अत्याचार और क्रूरता को धर्म बना लेते हैं; अपनी ज़िन्दगी के मक़सद को भूलकर अपनी आत्माओं को अपवित्र और कलुषित कर लेते हैं, उस समय अत्याचार-पीड़ित और दुखी लोगों की सहायता करनेवाला और ज़ोर-ज़बरदस्ती और हिंसा को ख़त्म करनेवाला सबका मालिक अपनी दया और अपनी कृपा से ऐसे पवित्र और महान् व्यक्तियों को संसार के विभिन्न भागों में, वहाँ की अवस्था के अनुसार, इस उद्देश्य से भेजा करता है कि सत्य-मार्ग से भटके हुए इंसानों को फिर उनका सही रास्ता दिखाया जाए और उनको पाप से बचाकर पुण्य की ओर आकर्षित किया जाए। हिन्दुओं की पवित्र पुस्तक श्रीमद्भगवत्गीता में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी गई है।

इसी प्राकृतिक नियम के अनुसार अरब देश में ईश्वर ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अपने बन्दों के पथ-प्रदर्शन के लिए क़ुरैश ख़ानदान में भेजा। काबा की कुंजियां इसी परिवार के पास रहती थीं। यह भी एक सर्वमान्य सत्य है कि जब ऐसे महान् व्यक्तियों का अवतरण होता है तो बड़े शुभ चिन्ह प्रकट होते हैं। इतिहास बताता है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के जन्म से पहले अरब में बड़ा भारी अकाल पड़ा हुआ था, महामारी फैली हुई थी, लेकिन महान् रसूल (सल्ल०) के जन्म ग्रहण करते ही पानी बरसा, जिससे महामारी दूर हो गई और अकाल का भी निवारण हो गया और ऐसे विभिन्न चिन्ह प्रकट हुए जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के प्रमुख ईश्वर-भक्त या ईश्वर-दूत होने के प्रमाण प्रस्तुत करते थे, जिनके विस्तार की यहां ज़रूरत नहीं।

सवाल यह हो सकता है कि अरब जैसे बंजर और मरुभूमि में इस पवित्र आत्मा का अवतरण क्यों हुआ? इसके बारे में उस समय देश की जो दशा थी, उसका वर्णन कर देना काफ़ी होगा—

(1) वहाँ के लोग उस समय अशिक्षित, असभ्य, अक्खड़, बर्बर, हठी, अड़ियल, झगड़ालू और भ्रांतियों के जाल में फंसे हुए थे। शिक्षा की इतनी कमी थी कि हज़रत पैग़म्बर साहब के विकास के समय केवल सत्रह आदमी शिक्षित थे। इस संख्या से प्रकट

होता है कि शिक्षा नहीं के बराबर थी।

(2) मदिरापान, जुआ, व्यभिचार का बाज़ार गर्म था। लोग अपनी दासियों से व्यभिचार करा के धन कमाया करते थे, और अपनी बहनों तक से विवाह कर लेते थे।

(3) पिता की पत्नी पर उत्तराधिकारी के रूप में पुत्र अधिकार कर लेता था।

(4) पत्नी-त्याग का बहुत अधिक रिवाज था। पति जब चाहता था पत्नी को छोड़ सकता था। कोई नियम या सिद्धान्त न था। बहु-विवाह की कोई सीमा न थी।

(5) लोग जात-पात पर बहुत गर्व करते थे। धन-दौलत और परिवार का घमंड करते थे। इसी कारण दास-प्रथा प्रचलित थी।

(6) एक स्त्री से कई-कई पुरुष सम्बन्ध रखते थे और बच्चा होने की अवस्था में वह स्त्री निर्णय कर देती थी कि बच्चा किसका है।

(7) कुसंस्कारों की भरमार थी। हर काम में शगुन लिया जाता था। मूर्तियों पर मनुष्यों की बलि चढ़ाई जाती थी। समाधि के पास ऊंट बांधकर उसको भूखा-प्यासा मारना पुण्य का काम समझा जाता। लड़कियों को जीवित गाड़ दिया जाता था।

(8) यदि अकाल पड़ता तो गाय की पूंछ में घास बांधकर आग लगा दी जाती थी, इस विश्वास से कि यह आकाश से वर्षा खींच लेगी।

(9) बदले की भावना बहुत तेज़ थी। मामूली-मामूली बातों पर ख़ून-ख़राबा हो जाता था। किसी इंसान की हत्या के बाद उसके नाक-कान भी काट लिए जाते थे। इस रिवाज को 'मुसला' कहा जाता था।

(10) युद्ध में जो स्त्रियाँ और बालक बन्दी होकर आते थे, उनको भी मार डाला जाता था; गर्भवती औरत का गर्भपात करा दिया जाता था। छोटे-छोटे बच्चों को भालों पर लटकाया जाता था। सोते हुए आदमियों पर आक्रमण किया जाता था। मनुष्यों का सिर, कान आदि काट कर उनका हार बनाकर पहना जाता था।

लोगों का साधारण धर्म मूर्ति-पूजा था। दूसरे धर्मों के लोग आटे में नमक के बराबर थे। हर परिवार का अलग-अलग देवता था। यह थी वहाँ के लोगों की दशा! अर्थात् वह मानवता से बहुत दूर जा पड़े थे। शिष्टता लेशमात्र को न थी। नैतिकता का दिवाला निकल चुका था। ईमान-धर्म नाम मात्र को भी न था, सहानुभूति और शुभकामना से उनके हृदय ख़ाली हो चुके थे। वे अज्ञानता और बर्बरता में डूबे हुए थे। उनके हृदय द्वेष,

शत्रुता, दुष्टता और पाप से भरे हुए थे। दूसरे को हानि पहुंचाते हुए न उनको ईश्वर का भय था और न मानवता के कर्तव्य का ध्यान। दूसरों को दुख देते हुए भी उनके हृदय में दया उत्पन्न न होती थी। वे कहने को मनुष्य थे, परन्तु उनका स्वभाव पशुओं का-सा था। वे देखने में मनुष्य थे और कर्म में पिशाच। वे हिंसक थे जो अपने सजाति मनुष्यों को भी क्षण भर में चीर-फाड़ डालते थे। अति तुच्छ बातों पर दूसरों के प्राण ले लेना खेल समझते थे। दूसरों की बहू-बेटियों के सतीत्व को नष्ट करना और उनसे बर्बरतापूर्ण व्यवहार करना उनके बायें हाथ का खेल था। दूसरों की मान-मर्यादा को नष्ट करने में उनको बड़ा आनन्द मिलता था। दूसरों के जान और माल की क्षति में वे बड़ी ख़ुशी महसूस करते थे। दूसरों पर अत्याचार और ज़्यादती करने में उनको बहुत ख़ुशी महसूस होती थी। अबोध बालकों को पिताहीन और भली स्त्रियों को विधवा बना देना उनकी नीति थी। मासूम और असहाय लोगों पर आक्रमण करना उनका स्वभाव था। दूसरों के माल को लूट लेना वे अपना धर्म समझते थे। दूसरों के धन और सामग्री को किसी भी अनुचित उपाय से प्राप्त कर लेना पुण्य कार्य समझते थे। वे धर्म और शास्त्र का अर्थ भूल चुके थे। उन्हें ज्ञान तक न था कि मनुष्य होने के नाते दूसरे मनुष्यों के प्रति उनके क्या कर्तव्य हैं। उन्हें पता तक न था कि शिष्टता, मानवता और सभ्यता किस वस्तु का नाम है। उन्हें ज्ञान तक न था कि नेक काम, नैतिकता और सदाचार किसको कहते हैं और मनुष्यता किस चीज़ का नाम है।

यह थी उस समय के अरबवालों की दशा। ईश्वर ऐसी दशा को पसन्द नहीं करता। उसे मनुष्यों की इतनी पथभ्रष्टता नहीं भाती। उन दुराचारी और शैतानी गुण रखनेवाले मनुष्यों के पथ-प्रदर्शन और शिक्षा के लिए अल्लाह ने अपनी दया से उन्हीं के बीच एक पवित्र आत्मा को प्रकट किया और फ़रिश्ते हज़रत ज़िबरील द्वारा लोगों के कुकर्मों और कुरीतियों पर अप्रसन्नता प्रकट की। महान् पुण्य आत्मा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के पवित्र जीवन को उनके लिए आदर्श बनाया, जिसका फल यह हुआ कि वे पशुता और पैशाचिकता को छोड़कर मनुष्य बन गए। यह था उस 'अहमद' और 'हामिद' को भेजने का उद्देश्य; यह था उस 'सय्यदुल मुर्सलीन' (ईशदूतों के सरदार) के भेजे जाने का अभिप्राय; यह था उस "रहमतुल्लिल आलमीन" (सम्पूर्ण संसार के लिए ईश्वरीय अनुकम्पा) के अवतरण का ध्येय; यही था दीने इस्लाम के विकासमान होने का कारण। यह धर्म उस प्रशंसित व्यक्ति द्वारा पुनर्जीवित किया गया जिसको मुनीर (प्रकाशमान), नज़ीर (ईश्वर से डरानेवाला), हादी (सुपथ प्रदर्शक), मुस्तफ़ा (पाप रहित और श्रेष्ठ), अज़ीज़ (प्रिय), इमाम (नेता), मुद्दस्सिर, (पवित्र वस्त्रधारी), मुज़म्मिल (कमली वाला), मुज़क्किर

(उपदेशक), ख़ैरुलबशर (पुण्यात्मा) और ख़ैरो ख़ल्क़िल्लाह (ईश्वर की सृष्टि का उत्तम पुरुष) आदि पवित्र नाम दिए गए हैं। अतः इससे प्रकट होता है कि इस्लाम धर्म के आविर्भाव से ईश्वर का उद्देश्य और अभिप्राय यह था कि सारी बुराइयां दूर हों और इस धर्म के ऐसे अनुयायी पैदा हों, जो मानव जाति का कल्याण चाहनेवाले, संसार में शान्ति क़ायम करनेवाले और भलाई के मार्ग पर चलनेवाले हों, जो मानवता के गुणों से परिपूर्ण हों, जो मनुष्यों के हक़ को समझें। जो पड़ोसियों के हक़ से परिचित हों, जो सहृदय हों, न्यायी और न्याय रक्षक हों, ईश्वर से डरनेवाले हों, स्त्रियों और बच्चों की रक्षा करनेवाले हों, बूढ़ों और निर्बलों पर दया करनेवाले हों, शुद्ध जीविका (हलाल रोज़ी) कमानेवाले हों, किसी का हक़ छीननेवाले न हों, किसी पर अत्याचार और ज़्यादती करनेवाले न हों। अपनी आमदनी पर सन्तोष करनेवाले हों, सदाचारी और संयमी हों, सांसारिक धन को संयम और ईश्वर-भय के आगे तुच्छ समझनेवाले हों।

इस्लाम का अर्थ है शान्ति

इस्लाम शब्द अरबी के सलाम शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है—सलामती, अमन एवं शांति। इस्लाम ईश्वर की पूर्ण प्रसन्नता-प्राप्ति का दूसरा नाम है। इस प्रकार इस्लाम का आधार है— अमन, शांति और ईश्वर-प्रसन्नता की प्राप्ति। इस्लाम के अनुयायी को ही मुस्लिम कहा जाता है। इससे मालूम हुआ है कि मुसलमान का वास्तविक उद्देश्य संसार में ईश्वर-प्रसन्नता को प्राप्त करते हुए अमन, शांति स्थापित रखना है।

एक बार मैंने इस्लाम और मुस्लिम की यह व्याख्या एक ग़ैर-मुस्लिम भाई को सुनाई, तो वह कहने लगा कि आज का मुसलमान तो इससे कोसों दूर है। मैंने कहा— हाँ, किन्तु एक सच्चा मुसलमान वही हो सकता है जो इस्लाम की वास्तविकता और उद्देश्य को समझकर अपना जीवन इसी के लिए अर्पण कर दे। यदि कोई मुसलमान इसके विरुद्ध कार्य करता है तो उसका उत्तरदायी वह स्वयं है, न कि इस्लाम। ईश्वर ने इस्लाम को और अपने पैग़म्बर को संसार में इसी उद्देश्य से भेजा था।

पवित्र क़ुरआन में ईश्वर को 'अमन' (शान्ति) का स्रोत लिखा है—

हुवल लाहुल्लज़ी ला इला-ह इल्ला हु व अल मलिकुल् क़ुद्दूसुस सलामुल् मुअ्मिनुल मुहैमिन। —क़ुरआन, 59:23

अर्थात् वह ऐसा पूज्य है कि उसके अतिरिक्त कोई दूसरा पूज्य नहीं है, वह सम्राट है, पवित्र है, सलामती और अमन देनेवाला है और सरक्षक है।

ईश्वर ने पैग़म्बर को सारी दुनिया के लिए कृपा (रहमत) बनाकर भेजा था। पवित्र क़ुरआन में है—

वमा अर्सलना क इल्ला रह-मतल-लिल आलमीन। —क़ुरआन, 21:107

अर्थात और (ऐ मुहम्मद!) हमने तुम्हें संसार के लिए दयालुता ही बनाकर भेजा है।

मुसलमानों को आदेश है कि जब किसी पैग़म्बर का नाम लो तो उसके साथ 'अलैहिस्सलाम' कहो। अर्थात् उनपर सलामती और अमन हो। मुसलमान एक-दूसरे से मिलने पर 'अस्सलामु अ़लैकुम' कहते हैं और जवाब में 'वालैकुमुस्सलाम' कहा जाता है। इन दोनों वाक्यों का अर्थ है— 'तुमपर अमन और सलामती हो।'

स्वर्ग में भी सलामती ही के शब्द से एक-दूसरे को पुकारा जाएगा—

व तही-यतुहुम फ़ीहा सलाम। —क़ुरआन, 10:10

इसका अर्थ है 'और उनका परस्पर सलाम यह होगा कि अमन व सलामती हो तुम पर।' यही नहीं बल्कि वहां सलामती और शांति-सुरक्षा के सुखद और आत्मा को प्रसन्नता प्रदान करनेवाले शब्दों के अतिरिक्त फ़ुज़ूल बातें सुनने में न आएँगी।

ला यसमऊ-न फ़ीहा लग़्वंव वला तासीमन इल्ला क़ीलन सलामन सलामा।

—क़ुरआन, 56:25-26

अर्थात् वे वहाँ न बकबक सुनेंगे और न कोई अन्य बेहूदा बात। वहाँ हर तरफ़ से अमनो-सलामती ही अमनो-सलामती की आवाज़ आएगी।

अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) व्यक्तिगत रूप से अति शान्तिप्रिय थे। आपके अगणित सुकथन इसके समर्थन में मिलते हैं। यहाँ केवल कुछ कथन दिए जा रहे हैं—

(1) निस्सन्देह अल्लाह तआला के निकट सबसे अधिक बुराई उस व्यक्ति के दिल में है जो बहुत झगड़े-बखेड़े करता है।

(2) यह एक कमी है कि तू सदा झगड़ता रहे। यह तेरी जान को कष्ट में डाले रखने के लिए काफ़ी है।

(3) ऐ भलाई चाहनेवाले, आगे बढ़ और ऐ बुराई चाहनेवाले, पीछे हट।

एक और स्थान पर आप ने फ़रमाया कि जो व्यक्ति झगड़ा छोड़ दे और वह हक़ पर हो उसके लिए स्वर्ग में मकान दिलाने की ज़मानत लेता हूँ।

नबी के जीवन की घटनाएँ उनकी शान्तिप्रियता का समर्थन करती हैं।

(1) हुदैबिया की संधि के अवसर पर दुश्मन क़ुरैशियों ने बड़ी कड़ी शर्तें पेश कीं। मुसलमान उनको स्वीकार करने के लिए तैयार न थे, किन्तु नबी (सल्ल०) ने किसी बात की परवाह न करते हुए झगड़े को समाप्त करने के लिए सन्धि कर ली।

(2) जब आप अपनी सेना के साथ मक्का वापस गए तो आप ने हुक्म दिया कि यथासम्भव कम-से-कम रक्तपात हो, अतः ऐसा ही हुआ। आपकी सेना किसी प्रकार की हिंसा या युद्ध के बिना मक्का में दाख़िल हो गई। यह वही नगर था, जहाँ आपको बहुत प्रताड़ित किया गया था और अन्ततः आप वहाँ से निकल गए थे, किन्तु फिर भी आपको शांति का इतना ध्यान था कि स्वयं आप एक हाजी का वस्त्र पहनकर उस पवित्र भूमि में दाख़िल हुए।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि आप इतने शान्तिप्रिय थे तो इतनी लड़ाइयाँ क्यों हुई? इसका कारण यह हुआ कि आप ने ये सारी लड़ाइयाँ रक्षात्मक लड़ीं, शान्तिप्रिय

और निर्दोष लोगों को हिंसा और अत्याचार से बचाने के लिए।

आपकी शान्तिप्रियता का प्रमाण आपके उन आदेशों से मिलता है जो आप अपनी सेना को दिया करते थे, जो नीचे लिखे जाते हैं—

"ईश्वर से डरो, अपनी इच्छाओं का दमन करो, ईश्वर का नाम लेकर जीयो, ईश्वर के आज्ञानुसार जीओ, उसी से सहायता माँगो और उसकी सेना बनकर युद्ध करो। किसी को किसी प्रकार का धोखा न दो; विरोधी के माल की चोरी न करो। मृतक की लाश को नष्ट न करो। बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियों पर हाथ न उठाओ; न उन पर जो युद्ध में सम्मिलित न हों। वृक्षों को अनावश्यक न काटो, पूजा-स्थलों को न गिराओ। तुम्हारा सरदार जिस स्थान पर तुम्हें नियुक्त कर दे, वहाँ स्थिर रहो; जो शरण मांगे उसे शरण दो; आक्रमण करते हुए ईश्वर को याद रखो; आग न लगाओ; खजूर के और दूसरे फलदार वृक्षों को न काटो; फसलों को हानि न पहुँचाओ, न उन्हें जलाओ; बिना ज़रूरत मवेशियों को न मारो, न उन्हें ज़ख़्मी करो।"

यह था हज़रत नबी (सल्ल०) का युद्ध-नियम।

इससे समझा जा सकता है कि जब इस्लाम में युद्ध के नियम इतने मानवता-पूर्ण, न्यायजनक और शांतिदायक हैं, तो उसके साधारण नियम कितने शान्तिपूर्ण होंगे।

मुसलमान कौन है ?

यदि कोई प्रश्न करे कि एक वाक्य में बताया जाए कि मुसलमान किसे कहते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि ''मुसलमान वह है जो इस्लाम का पालन करे'' और ''इस्लाम क्या है?'' यह पहले सविस्तार बताया जा चुका है।

मुसलमान वह है जो पवित्र क़ुरआन का माननेवाला, उसके अनुसार कर्म करनेवाला है और ईशदूत (सल्ल०) के आदर्श जीवन को अपने लिए मार्गदीप समझता है या जिस मार्ग पर आपके उत्तराधिकारी (ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन) और आपके वंशज चले, उसका अनुसरण करता है।

नीचे पवित्र क़ुरआन से भी मुसलमानों के कुछ गुण दर्शाए जा रहे हैं।

जिसने अपनी इन्द्रियों को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाया वह सफल हुआ और जिसने उनको अशुद्ध रखा, वह असफल रहा। —क़ुरआन, 91:9-10

इस से मालूम हुआ कि वही मुसलमान कहलाने के योग्य है जिसकी इन्द्रियों पर पाप की मैल न हो।

ईशदूत (सल्ल०) के आदर्श जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है। इसके बारे में भी क़ुरआन की गवाही पेश करना बहुत उचित होगा—

यह पैग़म्बर उन (अनपढ़ जाहिलों) को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाते हैं और उनको ईश्वरीय पुस्तक और ज्ञान की बातें सिखाते हैं। —क़ुरआन, 62:2

इस आयत में दो शब्दों पर ध्यान देने की आवश्यकता है अर्थात शुद्ध और स्वच्छ बनाना और ज्ञान की बातें सिखाना। जो मनुष्य इन दोनों बातों को अपने जीवन में सम्मिलित कर लेता है, वही मुसलमान कहलाने का अधिकारी है।

पवित्र क़ुरआन में भी मुसलमानों के लिए ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन को आदर्श बताया गया है—

लक़द् का-न लकुम फ़ी रसूलिल्लाहि उस्वतुन हसनः। —क़ुरआन, 33:21

अर्थात् तुम्हारे लिए ईश्वर के दूत के जीवन में एक उच्च आदर्श रखा गया है।

ईशदूत के सदाचरण और नैतिक पुष्पों के संग्रह का यदि संक्षेप में वर्णन किया जाए तो यूँ कह सकते हैं—

आप कभी किसी को बुरा न कहते थे। बुराई के बदले में बुराई न करते थे, बल्कि बुराई करनेवाले को क्षमा कर देते थे। किसी को अभिशाप नहीं देते थे। आपने कभी

किसी दासी या दास या सेवक को अपने हाथ से सज़ा नहीं दी, किसी की नम्रतापूर्वक मांग को कभी अस्वीकार नहीं किया। आपकी ज़बान में बड़ी मिठास थी, कभी बुरी बात अपनी ज़बान से नहीं निकालते थे। शान्तिप्रिय थे, अति सत्यवादी और ईमानदार थे। बड़े ही नम्र स्वभाव के सुव्यवहारशील और मित्रों से प्रेम करनेवाले थे। किसी का अपमान नहीं करते थे, सदा सत्य का समर्थन करते थे। क्रोध को सह लेते थे, अपने व्यक्तिगत मामलों में कभी क्रोधित नहीं होते थे। जिन व्यक्तियों को बुरा समझते थे, उनसे भी सुशीलता एवं सुवचन का व्यवहार करते थे। ज़ोर से हँसना बुरा समझते थे, परन्तु सदा हंसमुख और ख़ुश रहते थे।

ये सभी गुण बिना किसी अतिश्योक्ति के वर्णित किए गए हैं, बल्कि इनका प्रमाण आपके जीवन की घटनाओं से भी मिलता है। पवित्र क़ुरआन के एक वाक्य से पता लगता है कि इस्लाम में नैतिकता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सूरा अ-ब-स में आता है कि एक बार ईशदूत (सल्ल०) किसी विरोधी को समझा रहे थे कि इतने में एक मुसलमान आया, जो अन्धा था और वह ईशदूत को अपनी ओर आकर्षित करने लगा कि क़ुरआन का अमुक वाक्य किस प्रकार है, इसका अर्थ क्या है? आपको यह कुसमय का प्रश्न करना और वार्तालाप के बीच हस्तक्षेप बुरा मालूम हुआ और उस अन्धे पर आप नाराज़ हुए। उसी अवसर पर तुरन्त यह आयत उतरी, जिसका अनुवाद निम्नलिखित है—

"उसके माथे पर बल पड़ गए और ध्यान न दिया, इस कारण कि उसके पास अन्धा आया, और तुमको क्या पता कि शायद वह संवर जाता या उपदेश ग्रहण करता।"

—क़ुरआन, 80:1-4

इस आयत की व्याख्या की आवश्यकता नहीं अर्थात् ईश्वर ने इस्लाम में नैतिकता के स्तर को इतना ऊँचा स्थान दिया है कि किसी व्यक्ति पर अकारण त्योरी चढ़ाना भी ईश्वर को अच्छा नहीं लगा।

मुसलमान में कौन-से गुण होने चाहिएँ, इस्लाम के माननेवालों की वास्तविक विशेषता क्या होती है, सुनिए—

"ऐसे लोग जो अर्थदान करते हैं, अच्छी आर्थिक दशा में भी और कठिनाई में भी और गुस्से को पी जानेवाले और लोगों को क्षमा करनेवाले होते हैं; ईश्वर ऐसे उपकार करनेवाले को प्रिय रखता है। और जब वे कोई बुरा काम कर बैठते हैं या स्वयं अपने प्रति अन्याय कर बैठते हैं, तो वे ईश्वर का स्मरण करते हैं और अपने दोषों के लिए ईश्वर से क्षमा माँगते हैं।"

—क़ुरआन, 3:134-135

यह है ईश्वरीय आदेश, यह है इस्लाम की शिक्षा, जिसके आदेशानुसार चलकर

इसकी शान को बढ़ाया जा सकता है।

अत: हर मुसलमान का यह कर्तव्य है कि वह अपने जीवन को इन गुणों से परिपूर्ण करे और देखे कि वह कहाँ तक ईशदूत (सल्ल०) के पद-चिह्नों पर चल रहा है। कहाँ तक आपके आदेशों का पालन कर रहा है। एक मुसलमान सच्चा मुसलमान तभी हो सकता है, जब वह पूरी तरह से इस्लाम के अनुसार चले, जिसका आदर्श ईशदूत (सल्ल०) ने अपने जीवन में स्थापित किया। यदि किसी मुसलमान का आचरण इसके विपरीत है तो वह समझे कि वह इस्लाम का अनुयायी नहीं। ईशदूत (सल्ल०) तो वे थे जिन पर मानवता और शिष्टता को पूर्ण किया गया। इस्लाम की पूर्णता का अर्थ ही यह है कि मानवता और नैतिकता को उसके उच्च स्तर तक पहुँचा दिया जाएगा।

इस्लाम का आधार नैतिकता एवं सदाचार

मनुष्य जब संसार में आता है तो हर वस्तु से किसी न किसी रूप में उसका सम्बन्ध हो जाता है। इसी सम्बन्ध को भली-भाँति निभाने को सदाचार कहा जाता है अर्थात् सदाचार का उद्देश्य यह है कि मनुष्य परस्पर एक-दूसरे के स्वत्व (हक़) एवं कर्त्तव्यों का निर्वाह करें।

मनुष्य का पहला सम्बन्ध उसके माता-पिता, परिवार, पास-पड़ोस एवं मित्रगण से होता है। इसके बाद हर उस मनुष्य से उसका सम्बन्ध स्वयं हो जाता है जो उसके नगर, देश और जाति से सम्बन्धित होता है। इससे आगे बढ़ने पर मानवता के नाते न केवल प्रत्येक मनुष्य से बल्कि पशुओं तक से उसका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और इन सम्बन्धों के कारण उसके लिए कुछ कर्त्तव्यों का पालन भी आवश्यक हो जाता है। संसार में समस्त सुख-समृद्धि और शांति इसी सदाचार के कारण है। इसी सदाचार की क़मी को सरकार अपनी शक्ति और नियमों द्वारा पूरा करती है। यदि मनुष्य अपने नैतिक कर्त्तव्यों का पालन भली-भांति करे तो सरकार को शक्ति से काम लेने की कोई आवश्यकता ही न हो। भारतीय दण्ड-संहिता, फ़ौजदारी क़ानून, भारतीय सुरक्षा-नियम और दूसरे विधानों की आवश्यकता उसी समय पड़ती है, जब मनुष्य अपने नैतिक कर्त्तव्यों का पालन ठीक-ठीक नहीं करता। नैतिकता के दो बड़े नियम ये हैं—

(1) स्वयं जियो और जीने दो।

(2) जो बात तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते हो, उसे दूसरों के लिए भी उचित न समझो।

यदि इन दोनों नियमों का पालन भली-भांति किया जाता रहे तो संसार में कहीं कलह-अशांति, झगड़ा-बखेड़ा या किसी प्रकार की कोई गड़बड़ी नहीं पैदा हो सकती। प्रत्येक धर्म ने जहाँ पूजा-पाठ और इबादत के नियम बनाए हैं, वहीं नैतिकता और सदाचार के नियम भी बनाए हैं, ताकि धर्म के माननेवालों पर इतना नैतिक भार पड़े कि वह उनके क़दम को संमार्ग से बहकने न दे और यह एक वास्तकिता है कि पूजा-भक्ति के शुद्ध होने की बड़ी कसौटी नैतिक कर्त्तव्यों का पालन एवं आचरण की शुद्धि है।

यह भी एक सर्वमान्य सत्य है कि सभी धर्मों का आधार नैतिकता ही है। जितने

ईशदूत और सुधारक आए सबने यही शिक्षा दी कि सच बोलना अच्छा और झूठ बोलना बुरा है। न्याय करना भलाई और अन्याय एवं अत्याचार करना बुराई है। दान करना नेकी और चोरी करना बदी है।

किसी धर्म की शुद्धता का अन्दाज़ा उसकी नैतिक शिक्षाओं से लगाया जा सकता है। प्रत्येक धर्म ने सदाचार के कुछ नियम बनाए हैं। इसी प्रकार इस्लाम ने भी नैतिक नियम बनाए हैं। इस्लाम नैतिकता और सदाचार का बहुत ऊँचा आदर्श उपस्थित करता है। पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

इन्नमा बुइस्तु लिउतम्मिमु मकारिमल अख़्लाक़।

अर्थात् मैं इसलिए (नबी बना कर) भेजा गया हूँ कि सदाचार को उसके उच्च स्तर तक पहुँचा दूँ।

एक और अवसर पर आपने फ़रमाया—

''मैं सदाचार को सम्पूर्ण करने के उद्देश्य से उत्पन्न किया गया हूँ।''

इसलिए आप ने ईशदूत के पद पर सुशोभित होने के साथ ही इस कर्त्तव्य का पालन शुरू कर दिया।

जब कुछ मुसलमान देश त्याग करके हबश (Abyssinia) पहुँचे तो वहाँ के शासक नज्जाशी ने मुसलमानों को अपने दरबार में बुलवाकर इस्लाम के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाही, उस समय हज़रत जाफ़र तय्यार ने जो भाषण दिया, उसके कुछ वाक्य विशेष रूप से सुनने लायक़ हैं। उन्होंने कहा—

''हे राजन्! हम लोग एक उजड्ड जाति से सम्बन्ध रखते थे; मूर्तियों को पूजते थे; मरे हुए पशुओं को खाते थे; व्यभिचार करते थे; पड़ोसियों को सताते थे; भाई-भाई पर अत्याचार करते थे; बलवान निर्बलों को मार डालते थे। इसी बीच हममें एक व्यक्ति का उदय हुआ, उसने हमें सिखाया कि हम मूर्ति-पूजा छोड़ दें; सच बोलें; रक्तपात न करें, अनाथों का माल अनधिकार न खाएं, पड़ोसियों को आराम पहुँचाएं, स्त्रियों को कष्ट न दें।''

इसी प्रकार रोम के सम्राट क़ैसर के दरबार में अबू सुफ़ियान ने, जिन्होंने उस समय तक इस्लाम स्वीकार नहीं किया था, हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के सम्बन्ध में कहा—

''वे एक ईश्वर को मानने, उसकी इबादत करने के अतिरिक्त लोगों को यह सिखाते हैं कि वे पवित्रता एवं सदाचार ग्रहण करें; सच बोलें और मनुष्यों के प्रति कर्त्तव्यों का पालन करें।''

सदाचार आधा ईमान है, बल्कि ईमान की जान है। जो व्यक्ति आचारवान नहीं, वह ईमानदार नहीं हो सकता। पैग़म्बर (सल्ल०) ने जितना ज़ोर सदाचार पर दिया है, शायद ही किसी और गुण पर दिया हो।

एक अवसर पर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन मोमिन के पलड़े में सदाचार से अधिक वज़नदार कोई वस्तु न होगी और ईश्वर ज़बान से बुरी बातें निकालनेवाले व्यक्ति को बहुत बुरा समझता है।"

नैतिकता एवं सदाचार के सम्बन्ध में पैग़म्बर (सल्ल०) के बहुत-से सुकथन हैं। उनमें से कुछ का अनुवाद नीचे दिया जा रहा है—

(1) सबसे अधिक सम्पूर्ण ईमान (ईश्वर-विश्वास) उस व्यक्ति का है, जिसके आचरण अच्छे हैं। जो व्यक्ति अपने आचरण और कर्म को सुधारे तो स्वर्ग में ऊँचे से ऊँचे स्थान पर उसके लिए मकान बनाया जाएगा।

(2) क़ियामत के दिन मुझे अतिप्रिय और मेरे अत्यन्त निकट बैठनेवाले वे लोग होंगे, जिनके आचरण अच्छे होंगे और मेरे निकट अति घृणित और मुझसे बहुत दूर बैठनेवाले वे लोग होंगे, जो निरर्थक बकवास करनेवाले, घमण्डपूर्ण बातें और किसी बात को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहनेवाले होंगे।

(3) किसी ने पैग़म्बर (सल्ल०) से पूछा— "वे कौन-से सुकर्म हैं, जिनके द्वारा अधिकांश व्यक्ति स्वर्ग में प्रविष्ट होंगे?" आपने फ़रमाया— "ईश-भय एवं सदाचार।"

(4) मनुष्य चार बातों से मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) बन जाता है—(i) धरोहर की रक्षा न करे, (ii) बात करे तो झूठ बोले, (iii) संधि करके तोड़ दे, (iv) अनधिकार झगड़ा-बखेड़ा करे और गाली-गलोज पर उतर आए।

(5) एक बार पैग़म्बर (सल्ल०) से पूछा गया कि मुक्ति किन कारणों से मिलेगी? आप ने फ़रमाया—"शिष्टता का व्यवहार करने, ज़बान पर क़ाबू रखने और अपने पापों पर रो कर पश्चात्ताप प्रकट करने से।"

(6) ईश्वर के निकट सबसे प्रिय वह व्यक्ति है जो पहले सलाम करे।

पैग़म्बर (सल्ल०) की इस प्रकार की बहुत-सी हदीसें (सुकथन) हैं, स्थान की कमी के कारण यहाँ नहीं दी जा रही हैं।

ऐ मेरे भाइयो! हमें सोचना चाहिए कि अगर हम स्वर्ग के इच्छुक हैं और ईश्वर के प्यारे बनकर उसके निकट जाना चाहते हैं, तो हमारा आचरण उत्तम होना चाहिए। आज सदाचरण की कमी या उसका न होना ही 90 प्रतिशत झगड़ों का कारण है। यदि हम पैग़म्बर के फ़रमान के अनुसार अपने आचार-व्यवहार को सुधार लें तो हमें इस लोक में

भी सुख एवं सम्मान मिल सकता है और परलोक में भी चैन और आराम नसीब होगा। पैग़म्बर (सल्ल०) का सदाचरण इतना ऊँचा था कि जिन आदमियों को आप अच्छा नहीं समझते थे, उन से भी अति प्रसन्नतापूर्वक मिलते थे। एक बार ऐसा ही हुआ कि आप (सल्ल०) की पत्नी हज़रत आयशा (रज़ि०) ने पूछा—"आप तो फ़लाँ व्यक्ति को अच्छा नहीं समझते, फिर उससे इस शिष्टता से क्यों पेश आते हैं?" तो आपने फ़रमाया—"ऐ आयशा! तुम ने मुझे अशिष्टता करते हुए कब देखा?" वास्तव में कितने अच्छे थे प्यारे नबी (सल्ल०)! पवित्र कुरआन भी सदाचार की शिक्षाओं से भरा हुआ है, जिनमें से कुछ नीचे लिखी जा रही हैं—

(1) सदाचरण और ईश्वरभय में एक-दूसरे का साथ दो, परन्तु पाप और अत्याचार के कामों में सहायक न बनो। —कुरआन, 5:2

कितना खुला और स्पष्ट आदेश है। किन्तु हम अपने आचरण की ओर देखें तो मालूम होगा कि हम इसके बिलकुल विपरीत कर्म कर रहे हैं। हम हर बुरी बात में परस्पर सहायक बनते हैं, किन्तु अच्छे कामों की एक-दूसरे को ताकीद नहीं करते।

(2) अच्छी बातों का आदेश दो और बुरी बातों से रोको। —कुरआन, 31:16

(3) क्या तुम दूसरों को अच्छे कामों के लिए कहते हो और स्वयं अपने को भूल जाते हो?

(4) ऐ ईमानवालो! किसी के बारे में बुरे विचार क़ायम करने से बचते रहो। निस्सन्देह बहुत-से विचार पाप का कारण बनते हैं और किसी के भीतरी भेदों को न टटोला करो और न तुम पीठ पीछे किसी की निन्दा करो। क्या तुम में से कोई इस बात को पसन्द करेगा कि वह अपने मरे हुए भाई का मांस खाए (इसका अर्थ चुग़ली खाना और दोष निकालना भी है), अल्लाह से डरते रहो। —कुरआन, 49:12

(5) निस्सन्देह ईश्वर न्याय और सुकर्म दोनों का हुक्म देता है।

—कुरआन, 16:90

ये ईश्वरीय आदेश सदाचार और ईमान को कितना ऊँचा करनेवाले हैं? हमने इन्हें पीठ के पीछे डाल दिया है। क्या ईश्वर और धर्म के नाम पर दूसरों के साथ अन्याय करना, दूसरों को कष्ट देना, दूसरों को हानि पहुँचाना हमें स्वर्ग में ले जाएगा और ईश्वर और पैग़म्बर का प्रिय बना देगा। ऐसा कदापि नहीं हो सकता, विश्वास करो और कुरआन पाक और रसूले करीम (सल्ल०) ने कहीं भी ऐसे कुकार्यों का आदेश नहीं दिया है, बल्कि जितने आदेश मिलते हैं, वे झगड़े-फ़साद दूर करनेवाले हैं।

आपके प्रथम ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का बयान है कि मैंने अल्लाह

के रसूल (सल्ल०) को कहते हुए सुना है कि यदि लोग अत्याचारी को अत्याचार करते देखें और उसके दोनों हाथ न पकड़ें तो हो सकता है वे सब के सब ईश्वर के प्रकोप में पकड़ लिए जाएँ।

अत: याद रखिए कि जब तक कोई संस्था नैतिक शिक्षाओं को अपने हाथ में न रखेगी, उनकी रक्षा नहीं हो सकती। किसी भी जाति के व्यवहार इसी नियम के अनुसार जीवित हैं। यूँ देखने में नैतिक बातें हर व्यक्ति की व्यक्तिगत और निजी मालूम होती हैं। जैसे उनका लाभ-हानि उसी तक सीमित हो। किन्तु गहरी दृष्टि से देखो तो मालूम होगा कि उनके प्रभाव और परिणाम सारे समाज को प्रभावित करते हैं। बुरे परिणामों का प्रभाव एक से दूसरे तक और दूसरे से तीसरे तक पहुँचता है और इसी प्रकार सारे समाज में फैल जाता है। साथ ही यह बात भी है कि यदि उनकी रोकथाम न की जाए तो वे बुराइयाँ हर ओर फैल जाती हैं। उनकी बुराई, बुराई नहीं रह जाती और लोग इसको अपनी आदत बना लेते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि कुछ दिनों के बाद सारे समाज का नैतिक ढाँचा दूषित हो जाता है और वह अपने उच्च स्तर से गिर जाता है।

ऐ मुस्लिम भाई! हमें ग़ौर करना चाहिए कि वह सदाचार जो इस्लाम धर्म के लिए गौरव का कारण है, जिसकी शिक्षाओं से पवित्र क़ुरआन भरा पड़ा है, जिस पर रसूले करीम (सल्ल०) ने इतना ज़ोर दिया है, जिस पर आपने हज़रत आयशा के सामने गर्व किया, जिसको उन्होंने अपने जीवन में ढालकर अंतिम साँस तक निबाहा, हमने अपने जीवन में कहाँ तक उसे ग्रहण किया? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम उसको छोड़ बैठे हों और दुराचार का विष हम में धीरे-धीरे घुसता जा रहा हो?

पवित्र क़ुरआन नैतिक शिक्षाओं से ओत-प्रोत है। एक साधारण मुसलमान क़ुरआन के ज़रा-से असम्मान की बात सुनकर मरने-मारने को तैयार हो जाता है। लेकिन वह स्वयं उसके आदेशों का पालन न करके प्रतिदिन उसका असम्मान करता रहता है और उसे उसपर कोई दुख नहीं होता।

न्यायप्रियता

न्याय ईश्वर के सबसे बड़े गुणों में से एक अतिआवश्यक गुण है। ईश्वर के न्याय से ही संसार का यह सारा कार्यालय चल रहा है। उसका न्याय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कण-कण में काम कर रहा है। न्याय का शाब्दिक अर्थ है एक वस्तु के दो बराबर-बराबर भाग, जो तराज़ू में रखने से एक समान उतरें, उनमें रत्ती भर फ़र्क़ न हो और व्यवहारत: हम इसका मतलब यह लेते हैं कि जो बात कही जाए या जो काम किया जाए वह सच्चाई पर आधारित हो, उसमें तनिक भी पक्षपात या किसी प्रकार की असमानता न हो।

इस्लाम में न्याय को बहुत महत्व दिया गया है और क़ुरआन में जगह-जगह मनुष्य को न्याय करने के आदेश मौजूद हैं। इसमें जहाँ गुण सम्बन्धी ईश्वर के विभिन्न नाम आए हैं, वहाँ एक नाम आदिल अर्थात् न्यायकर्त्ता भी आया है। ईश्वर चूंकि स्वयं न्यायकर्त्ता है, वह अपने बन्दों से भी न्याय की आशा रखता है। पवित्र क़ुरआन में है कि ईश्वर न्याय की ही बात कहता है और हर बात का निर्णय न्याय के साथ ही करता है। क़ुरआन की कुछ आयतों का अनुवाद नीचे दिया जा रहा है—

(1) "यदि आप कोई निर्णय करें तो लोगों के बीच न्याय के साथ निर्णय करें। निस्सन्देह, ईश्वर न्याय करनेवाले को प्रिय रखता है।" —क़ुरआन, 5:42

(2) "जब कोई मामला चुकाओ तो न्याय से काम लो।" —क़ुरआन, 4:58

(3) "ऐ ईमान वालो! न्याय पर मज़बूती से जमे रहनेवाले बनो।"

यही नहीं कि ईश्वर ने साधारण स्थिति में न्याय करने का आदेश दिया है बल्कि दूसरे लोगों के भड़काए जाने पर भी न्याय ही करने का आदेश दिया है, एक स्थान पर है—

"किसी विशेष सम्प्रदाय की शत्रुता के कारण तुम न्याय से विमुख न हो जाओ, बल्कि न्याय से अवश्य काम लो।" —क़ुरआन, 5:8

इससे बढ़कर स्पष्ट और खुला आदेश और क्या हो सकता है?

अब हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) का इर्शाद भी देखें—

"निस्सन्देह न्याय करनेवाले क़ियामत के दिन ऊँचे स्थानों पर होंगे, जो कि जगमगाते होंगे और उनका स्थान ईश्वर की दाईं ओर होगा।" —हदीस : मुस्लिम

यहाँ रसूले करीम के जीवन की घटनाओं का वर्णन भी अनुचित न होगा, जिससे प्रकट होगा कि आप कितने न्यायप्रिय थे और न्याय से कितना काम लेते थे।

एक बार आपने आवश्यकतावश किसी से एक प्याला लिया, वह किसी प्रकार टूट गया। आपने वैसा ही प्याला ख़रीदकर उसे वापस दिया।

जब रसूले करीम (सल्ल०) का अंतिम समय निकट आया तो आपने सभी लोगों को बुलाया और कहा—

"यदि मैंने किसी को बुरा-भला कहा हो तो वह भी मुझे जी भरकर बुरा-भला कह ले और यदि मैंने किसी को कोई कष्ट दिया हो तो वह भी मुझे मनमाना कष्ट दे ले।"

यह है रसूले करीम (सल्ल०) की महानता! पाठक इस घटना को ग़ौर से पढ़ें और अपने दिल के तराज़ू में इसे तौलें।

रसूले करीम (सल्ल०) ने ऐसा क्यों कहा? इसके दो कारण हैं— एक तो यह कि ईश्वर के दरबार में ज़रा-सी बेइंसाफ़ी का भी हिसाब लिया जाएगा; दूसरे इस्लाम धर्म की महानता इसी में है। ऐसी घटनाओं से इस्लाम की गरिमा प्रकट होती है। ऐ लोगो! तुम्हें पैग़म्बरे इस्लाम के जीवन की इस घटना से उपदेश ग्रहण करना चाहिए। यह जीवन में आदर्श बनाने के योग्य है।

रसूले करीम (सल्ल०) जब किसी अन्य धर्मावलम्बी से कोई संधि करते थे तो अपने अनुयायियों को सदा ताकीद करते थे कि हर बात में न्याय को ध्यान में रखा जाए; क्योंकि ईश्वर स्वयं न्यायकर्ता है और न्याय को ही प्रिय रखता है।

रसूले करीम (सल्ल०) ने एक बार फ़रमाया—

"जो व्यक्ति अन्याय से किसी की बालिश्त भर भी ज़मीन ले लेगा, तो वह क़ियामत के दिन सातों ज़मीनों तक धंसाया जाएगा।" —हदीस : बुख़ारी

आज जो हम हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) के इस स्पष्ट आदेश के विरुद्ध आचरण करते हैं, इसका कारण यह है कि या तो हमें हज़रत के इस आदेश का पता नहीं है या हमारा उनकी बातों पर ईमान नहीं है। यदि यह सच है तो हम अपने को उनका अनुगामी कैसे कह सकते हैं?

यदि हम इस्लाम की शान को बुलन्द रखना चाहते हैं तो हमें किसी भी समय न्याय को हाथ से न जाने देना चाहिए। न्यायप्रियता और सत्यवादिता को अपना जीवन-ध्येय बनाना चाहिए।

ईश्वर हमें न केवल न्याय करने का आदेश देता है, बल्कि सुकर्म करने की भी आज्ञा देता है। फ़रमाया—

"निस्सन्देह ईश्वर तुम्हें न्याय और सुकर्म की आज्ञा देता है।"

—क़ुरआन, 16:90

किसी संविधान का आधार न्याय है और न्याय सुकर्म नैतिकता से उत्पन्न होता है। ईश्वर ने संसार का प्रबन्ध स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम न्याय का आदेश दिया है और इसके साथ ही नेकी करने की भी ताकीद की है।

पवित्र क़ुरआन में न केवल सांसारिक सम्बन्धों में न्याय से काम लेने की ताकीद की गई है, बल्कि घरेलू जीवन में भी इस पर बड़ा ज़ोर दिया गया है।

साधारण लेन-देन के सम्बन्ध में क़ुरआन की सूरा-6(अनआम), रुकूअ-19, आयत-152 में न्याय से काम लेने का आदेश आया है और संधिपत्र आदि के आलेख लिखने में भी न्याय को नज़र में रखने की आज्ञा सूरा-2 (बक़रा) के रुकूअ-39, आयत-282 में आई है और सूरा-5 (माइदा) के रुकूअ-2, आयत-8 में गवाही देने के बारे में भी न्याय से काम लेने की ताकीद की गई है। सारांश यह है कि मानव-जीवन के हर विभाग में इस्लाम ने न्याय को सदा आगे रखा है। न्याय के सम्बन्ध में साधारण-असाधारण, धनी-निर्धन, अपने-बेगाने सबके साथ समानता और बराबरी का व्यवहार करने का आदेश दिया है; क्योंकि सबका पालनकर्त्ता तो एक ही है और सभी उसके बन्दे हैं। इस नाते सभी भाई-भाई हुए और भाई को भाई के साथ न्याय करना आवश्यक ही है; अन्याय करना अपने पालनकर्ता ईश्वर को नाराज़ करना होगा।

निस्सन्देह शैतान मनुष्य का सदा बुरा चाहता है। वह उसके सामने लोभ-लालच के कारण उत्पन्न करके उसकी कुत्सित इच्छाओं को उभार कर उसके सम्मुख प्रलोभनों को लाकर क़दम-क़दम पर दूसरों के अधिकार को छीनने, दूसरों के माल पर क़ब्ज़ा जमाने, दूसरों की भूमि एवं मकान हथियाने, दूसरों की वस्तुओं को हड़पने के लिए बुद्धि पर परदा डालकर उकसाता है और उसको गुमराही में ले जाता है। इसी लिए ईश्वर ने मनुष्य को चेतावनी दी है—

"तुम न्याय करने में अपनी मनोकामनाओं का अनुसरण न करो।"

—क़ुरआन, 4:135

क़ुरआन पाक में न्याय के सम्बन्ध में जितनी आयतें आई हैं, उनमें अन्याय के एक-एक कण को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया है। हर जगह न्याय से काम लेने की ताकीद की गई है। न्याय के सामने अन्याय को किनारे रखने, पारिवारिक सम्बन्धों का लिहाज़ न करने, अपने विशेषजनों की रिआयत न करने, धनी और निर्धन में कोई फ़र्क़ न करने, गवाही में किसी प्रकार के पक्षपात से काम न लेने और अपने व्यक्तिगत लाभ एवं स्वार्थ को अलग रखने आदि-आदि की बड़ी ताकीद आई है।

यदि आज हम इन ईश्वरीय आदेशों का पालन करें, उन्हें अपने दिल में स्थान दें,

उनको अपने व्यावहारिक जीवन में ग्रहण करें, तो न केवल मनुष्य के तमाम झगड़े-बखेड़े समाप्त हो जाएं, बल्कि अंतर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय विवाद भी मिटाए जा सकते हैं, किन्तु दुख इस बात का है कि हमने इन शिक्षाओं को केवल इस बात पर गर्व करने के लिए रख छोड़ा है कि हमारे धर्म में ऐसी शानदार शिक्षाएं मौजूद हैं। हमने कभी यह नहीं सोचा कि इन शिक्षाओं पर अमल करना भी हमारा कर्त्तव्य है। सच यह है कि इन पर अमल ही से हम सच्चे-पक्के धार्मिक व्यक्ति बन सकते हैं। धर्म हमको प्रकाश की ओर ले जाना चाहता है। किन्तु हम अंधेरे ही में भटकने और ठोकरें खाने को अपने लिए श्रेयस्कर समझते हैं।

क्षमाशीलता

इस्लामी विश्वासों के अनुसार क्षमाशीलता भी ईश्वर के गुणों में से बहुत बड़ा गुण है। यदि यह न हो तो यह ब्रह्माण्ड एक क्षण के लिए भी स्थापित न रहे। पवित्र क़ुरआन में ईश्वर के जो विशेष नाम आए हैं, उनमें—अफ़ूवु, ग़ाफ़िर, ग़फ़्फ़ार और ग़फ़ूर भी हैं (इन सब के अर्थों में क्षमा सम्मिलित है)। पवित्र क़ुरआन में एक स्थान पर ईश्वर की गरिमा को प्रकट करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है—

"और वही है, जो अपने बन्दों की तौबा क़बूल करता है और बुराइयों को क्षमा करता रहता है।" —क़ुरआन, 42:25

दयालु ईश्वर ने अपने पवित्र ग्रन्थ में जगह-जगह अपने भक्तों को अपनी क्षमाशीलता और दयालुता का विश्वास दिलाया है। एक स्थान पर लिखा है—

"और इसमें सन्देह नहीं कि जो तौबा करता है, ईमान लाता है, सुकर्म करता है और संमार्ग पर स्थित रहता है, मैं उसको बहुत-बहुत क्षमा प्रदान करनेवाला हूँ।"

—क़ुरआन, 20:82

पवित्र क़ुरआन में ईश्वर ने 85 स्थानों पर अपने आपको क्षमा प्रदान करनेवाला लिखा है। इससे अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि यह गुण ईश्वर को कितना प्रिय है और उसकी दृष्टि में उसका कितना महत्व है। इससे हम समझ सकते हैं कि उस परमेश्वर की क्षमाशीलता का सागर किस ज़ोर-शोर से ठाठें मार रहा है एवं उसकी दयालुता का स्रोत किस जोश से प्रवाहित हो रहा है।

इस दुनिया में हम देखते हैं कि एक अच्छे पिता की इच्छा भी यही होती है और वह अपनी संतान को यही आदेश भी देता है कि वह अच्छे गुणों को अपने जीवन में साकार करे और उसके नक्शे क़दम पर चले।

सांसारिक पिता से कहीं बढ़कर उस सर्वशक्तिमान अल्लाह को प्रसन्न करना आवश्यक है और विशेष रूप से ताकीद की गई है कि उसके भक्त उन सभी अच्छे गुणों को ग्रहण करें जो अल्लाह को प्रिय हैं।

क्षमाशीलता के सम्बन्ध में पवित्र क़ुरआन में भक्तों को यह आदेश दिया गया है—

"यदि किसी के दोष को तुम क्षमा कर दो और टाल जाओ, तो निस्सन्देह अल्लाह बड़ा क्षमा करनेवाला और बड़ा दयावान है।" —क़ुरआन, 64:14

इस आयत से हमें ईश्वर की प्रसन्नता और इच्छा का स्पष्ट पता चल जाता है। ईश्वर कहता है—

"ऐ मनुष्यो! तुम मुझसे क्षमा की आशा उसी समय तक कर सकते हो जब तुम स्वयं अपने दोषियों को क्षमा करोगे।"

एक और आयत में इस बात का और अधिक ज़ोरदार शब्दों में वर्णन किया गया है—

"और चाहिए कि वे क्षमा कर दें। क्या तुम नहीं चाहते कि ईश्वर तुम को क्षमा कर दे और ईश्वर क्षमा करनेवाला और कृपालु है।"

ईश्वर ने क़ुरआन में अपने प्रिय भक्तों के गुण कई स्थानों पर बयान किए हैं। एक स्थान पर फ़रमाया है—

"और जब (उनको किसी पर) क्रोध आता है तो वे उसे क्षमा कर देते हैं।"

—क़ुरआन, 42:37

शान्ति की स्थिति में अर्थात् साधारण दशा में किसी को क्षमा करना कठिन नहीं। परन्तु क्रोध के समय मनुष्य एक प्रकार से पागल हो जाता है। उस समय मनुष्य अपने आपको क़ाबू में नहीं रख सकता। क्रोध ही की स्थिति में बेटा बाप तक की, भाई भाई की, भाई बहन की, बेटा माँ की, पति पत्नी की हत्या कर देता है। इस स्थिति में बुद्धि लुप्त हो जाती है। मनुष्य अच्छे-बुरे को नहीं सोच सकता। किन्तु ईश्वर अपने अच्छे बन्दों से इस दशा में भी आशा रखता है कि वे अपने दोषियों को क्षमा कर दें और इस क्षमाशीलता की शिक्षा इस प्रलोभन के साथ दी है कि मनुष्य उसी दशा में अपने पापों और दोषों की क्षमा की आशा अपने पालनकर्त्ता से कर सकता है जब कि वह स्वयं क्षमा करनेवाला हो।

क़ुरआन की शिक्षा कितनी शानदार है! इसका सारांश यह है कि जो मनुष्य दूसरे के दोष को क्षमा कर सकता है, वह स्वयं किसी दोष का दोषी प्राय:कम ही होगा। जो अपनी मनोकामनाओं को इतना वशीभूत कर चुका हो कि वह किसी को क्रोधावस्था में भी क्षमा कर सकता हो तो उसका मन उसे पाप-मार्ग पर ले जाने में कभी सफल नहीं हो सकता। पवित्र क़ुरआन का यह आदेश तो व्यक्तिगत व्यवहारों में क्षमा करने के सम्बन्ध में है। अब आगे देखिए धार्मिक विभेदों के बारे में जो शानदार आदेश पवित्र क़ुरआन में है, वह प्रत्येक मनुष्य के लिए अपने-अपने गले में लिखकर लटकाने योग्य है। और मैं तो कहूंगा कि जो भी इस उच्च आदेश का पालन करेगा, वही मनुष्य है और वही मुसलमान है; क्योंकि सच्चा इंसान ही सच्चा मुसलमान है और सच्चा मुसलमान ही सच्चा इंसान है। अब वह आदेश सुनें—

"और यदि तुम उनको संमार्ग की ओर बुलाओ और वे तुम्हारी एक न सुनें और देखने में वे तुमको ऐसे दिखाई देते हों कि मानो वे तुम्हारी ओर ध्यान दे रहे हैं (हालांकि ध्यान अन्य ओर हो, तो ऐ सन्देष्टा! ऐसी परिस्थिति में) क्षमा से काम लो और लोगों से सुकर्म के लिए कहो और जाहिलों से न उलझो।" —कुरआन, 7:198-199

महान है ईश्वर! इस आयत से धार्मिक उदारता का स्रोत प्रवाहित हो रहा है। लेकिन क्या हम इस पवित्र आदेश पर विश्वास रखते हैं? नहीं, नहीं! हम तो बात-बात पर क्रोधित हो जाते हैं।

ऐ मेरे भाई! ईश्वर ने केवल उदारता दिखाने और क्षमाशीलता की शिक्षा ही नहीं दी है, बल्कि इस्लाम के सच्चे अनुयायी को इससे भी आगे बढ़ने और अधिक नम्रता, सहनशीलता और उच्च आदर्शिता से काम लेने का आदेश भी दिया है।

सुनिए! पवित्र क़ुरआन में अल्लाह ने अपने प्यारे रसूल के द्वारा मुसलमानों ही को नहीं, मानव मात्र को क्या आदेश दिया है—

"यदि कोई तुम्हारे साथ बुराई करे तो बुराई को ऐसे व्यवहार से मिटाओ जो बहुत ही अच्छा हो। (ऐ पैग़म्बर!) जो कुछ वे तुम्हारे बारे में कहते हैं, वह हम को भली-भांति मालूम है।" —कुरआन, 23:96

एक और आदेश सुनिए—

"बुराई को भलाई से दूर करो।" —कुरआन, 28:54

महान है ईश्वर! कितनी पवित्र और कितनी उत्तम शिक्षा है यह। प्राय: ग़ैर मुस्लिम भाई, बल्कि मुस्लिम भाई भी यह समझते हैं कि इस्लाम में बुराई के बदले भलाई करने का कहीं आदेश नहीं। वे भाई इस आयत को आंखें खोलकर देखें और अपनी अज्ञानता को दूर करें।

ऐ मेरे भाई! मैं अभी आपको इससे थोड़ा और आगे ले चलूँगा। शायद किसी को ख़याल हो कि व्यक्तिगत दुर्व्यवहार या कष्ट सहा जा सकता है, किन्तु यदि धर्म पर आक्रमण हो तो उसे सहन नहीं किया जा सकता, तो मैं ऐसे भाइयों की इस धार्मिक भावना पर क़ुरबान जाऊँ। किन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि किसी धर्म के अनुयायी के लिए उसी धर्म के आदेशों के विरुद्ध काम करना कहाँ तक धर्म का पालन या धर्म का सम्मान कहा जा सकता है?

आइए! मैं आपको सुनाऊँ कि ऐसी दशा में भी हमें इस्लाम क्या आदेश देता है, ज़रा कान खोलकर सुनिए—

"ऐ मुसलमानो! अधिकांश ग़ैर-मुस्लिम इसके बावजूद कि उन पर सत्य धर्म

प्रकट हो चुका है, फिर भी अपनी हार्दिक ईर्ष्या के कारण चाहते हैं कि तुम्हारे 'ईमान' लाने के बाद तुमको फिर 'काफ़िर' (इंकारी) बना दें, तो उन्हें क्षमा करो और उन्हें छोड़े रखो, यहाँ तक कि ईश्वर फिर अपना निर्णय भेजे।''

वाह, वाह! इस आयत की क्या शान है! इससे प्रकट होता है कि यदि कोई मनुष्य किसी मुसलमान को ईमान से डिगाने की कुत्सित चेष्टा करे अर्थात् ऐसा कठोर अपराध करे तो ऐसे अपराधी को भी क्षमा कर देने का आदेश है। इससे अधिक इस्लाम की उदारता और उच्च आदर्शिता का क्या प्रमाण हो सकता है?

आज बहुत-से ग़ैर-मुस्लिमों के मन में यह भ्रम जड़ पकड़ चुका है कि क़ुरआन में ग़ैर-मुस्लिमों को क़त्ल करने और हर उचित-अनुचित ढंग से उनके माल व जायदाद को हथिया लेने के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं लिखी है।

ऐ मेरे मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम भाइयो! ईश्वर के लिए इस्लाम को बदनाम न करो। कुछ अज्ञानी मनुष्यों की अज्ञानता के कारण इस पवित्र धर्म पर यह दोष मत लगाओ। इस धर्म की शिक्षा तो वह है जो ऊपर लिखी गई है। अभी मैं आपको और आगे ले चलूँगा, तो आप और अधिक आश्चर्यचकित रह जाएंगे।

ईश्वर ने किसी के अपराध को क्षमा कर देने को बड़े साहस का कार्य बताया है, न कि भीरुता या साहसहीनता का। देखिए—

''और जो व्यक्ति धैर्य एवं सन्तोष से काम ले और दूसरे के दोष को क्षमा कर दे तो निस्सन्देह यह बड़े साहस का काम है।'' —क़ुरआन, 42:43

एक और स्थान पर न केवल क्षमा करने का आदेश है, बल्कि उसे खुले और छिपे तौर पर भलाई करने के समान ठहराया गया है। सुनिए—

''भलाई खुले रूप से करो या छिपाकर करो या किसी की बुराई करने के पश्चात् उसे क्षमा कर दो (तो यह नेकी करना है)। ईश्वर सर्वशक्तिमान होते हुए भी अति क्षमाशील है।'' —क़ुरआन, 4:149

यही नहीं कि क्षमा करने को एक सुकर्म ठहराया है, बल्कि अत्याचार करने को महापाप बताया है और फ़रमाया है कि ईश्वर अत्याचारी की ओर से अपना मुख फेर लेता है। देखिये—

''और ईश्वर अत्याचारियों को सन्मार्ग नहीं दिखाता।'' —क़ुरआन, 9:24

ईश्वर ने कई स्थानों पर पवित्र क़ुरआन में शुद्ध जीवन-व्यवस्था का परिचय कराते हुए फ़रमाया है—

''(हे नबी!) नर्मी और क्षमा से काम लो; सुकर्म का आदेश देते रहो और मुर्खो के

मुँह मत लगा करो।''　—क़ुरआन, 7:199

इससे स्पष्ट है कि जहाँ सुकर्म का आदेश और अज्ञानी व्यक्तियों से अलग रहने की ताकीद है, वहीं साथ-ही-साथ क्षमा करने का भी आदेश है अर्थात् क्षमा करना और सुकर्म की प्रेरणा देना दोनों एक ही बात है।

मैं समझता हूँ आज के साम्प्रदायिक दंगे पवित्र क़ुरआन की शिक्षा से उदासीनता दिखाने का परिणाम हैं। यदि ईश्वरीय आदेश को सदा सामने रखा जाए तो यह सारे दंगे-झगड़े पूरी तरह ख़त्म हो सकते हैं। स्वार्थी लोग आज तमाशा देख रहे हैं। इधर की आग उधर और उधर की इधर भड़काने में लगे हैं। झूठी ख़बर और अफ़वाहें उड़ाकर दंगे कराते हैं। इसी लिए पवित्र क़ुरआन में कहा गया है—

''ऐ मुसलमानो! यदि कोई दुष्ट व्यक्ति तुम्हारे पास कोई सूचना लाए तो भली-भाँति जाँच-पड़ताल कर लिया करो, ऐसा न हो कि अज्ञानतावश तुम किसी जाति पर जा चढ़ो और फिर तुम्हें अपने किए पर पछताना पड़े।''　—क़ुरआन, 49:6

ऊपर क्षमाशीलता के सम्बन्ध में पवित्र क़ुरआन के कई आदेश लिखे जा चुके हैं और वे पर्याप्त हैं। किन्तु अभी कई और ज़ोरदार और अर्थपूर्ण ईश्वरीय आदेश बाक़ी हैं, जिनकी शान बड़ी निराली है। मैं नहीं समझ सकता कि इनके होते किसी मुसलमान को किसी ग़ैर-मुस्लिम से दंगे-फ़साद करने की गुंजाइश रह जाती है। देखने से मालूम होता है कि एक स्थान पर ईश्वर ने सुकर्मियों को यहाँ तक आदेश दिया है कि जो लोग नास्तिक हैं, कर्म-परिणाम को भी नहीं मानते, उनको भी क्षमा कर दो। देखिए—

''ऐ पैग़म्बर! ईमानवालों से कह दो कि वे उनको भी क्षमा कर दिया करें जो ईश्वर के कर्म-परिणाम की घटनाओं पर विश्वास नहीं रखते, ताकि लोगों को उनके करतूतों का बदला मिले। जिसने भलाई की उसने अपने लिए भलाई की, जिसने बुराई की उसने अपना ही बुरा किया और एक दिन तुम अपने पालनकर्त्ता के पास लौटाए जाओगे।''

—क़ुरआन, 45:14-15

यह आयत उस समय उतरी, जब किसी विरोधी ने कोई ग़लत बात कही थी। इस पर मुसलमानों को क्रोध आ गया तो ईश्वर ने मुसलमानों को क्षमाशीलता का उपदेश दिया। अब कुछ घटनाएं पैग़म्बरे इस्लाम के जीवन की देखें जिनमें आप ने क्षमाशीलता का दरिया बहा दिया है—

(1) मनुष्य उस समय अति क्रोधित हो जाता है, जब उसके सम्मान पर आक्रमण किया जाता है। जब कुछ बुरे लोगों ने पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद की सुपत्नी हज़रत आयशा (रज़ि०) पर झूठा आरोप लगाया तो इससे आपको बहुत दुख पहुँचा। किन्तु हज़रत की

शान देखिए कि उन सब लोगों को क्षमा कर दिया। उनमें एक व्यक्ति मुस्तह नामक भी था जो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का रिश्तेदार था और वही उसका पालन-पोषण करते थे। उन्होंने उससे रुष्ट होकर उसकी आर्थिक सहायता बन्द कर दी। इस पर ईश्वर की ओर से एक आयत उतरी जो क़ुरआन की सूरा नूर में है। आप भी उसे देखिए—

"तुम में जो श्रेष्ठ और सामर्थ्यवान् हैं, वे इस बात की क़सम न खा बैठें कि अपने नातेदारों, मुहताजों और अल्लाह के मार्ग में हिजरत (देश-त्याग) करनेवालों को कुछ न देंगे। उन्हें चाहिए कि क्षमा कर दें और छोड़ दें। क्या तुम नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें क्षमा करे और जान रखो कि अल्लाह क्षमाशील एवं दयालु है।" —क़ुरआन, 24:22

एक और आयत में इस विशेषता को बड़े सौभाग्य की बात बताई गई है और दिखाया गया है कि इससे किस प्रकार शत्रुता मित्रता में बदल जाती है। देखिए—

"भलाई और बुराई बराबर नहीं है। यदि कोई बुराई करे तो उसका जवाब भलाई से दो। यदि तू ऐसा करेगा तो जिससे तेरी दुश्मनी है, वह ऐसा हो जाएगा मानो तेरा घनिष्ठ मित्र है। और यह गुण उन्हीं को मिलता है जो सहनशील हैं और जो बड़े सौभाग्यवान हैं और यदि इस सम्बन्ध में शैतान के उकसाने से तुम्हारे अन्दर कोई उकसाहट पैदा हो जाए तो ईश्वर की शरण ढूंढ़। निस्सन्देह वही सब कुछ सुननेवाला और जाननेवाला है।

—क़ुरआन, 41:34-36

इससे स्पष्ट है कि क्रोध के कारण क्षमाशीलता के विरुद्ध मनुष्य से जो कर्म होता है, वह शैतानी कर्म है। इससे ईश्वर बचाए। इसकी व्याख्या करते हुए अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास कहते हैं—

"ईश्वर ने इस आयत में मुसलमानों को क्रोध की अवस्था में धैर्य का, अज्ञानता एवं मूर्खता के समय सहनशीलता का और बुराई की तुलना में भलाई का और क्षमाशीलता का आदेश दिया है। जब वे ऐसा करेंगे तो ईश्वर उनको शैतान के प्रभाव से सुरक्षित रखेगा।"

(2) रसूले करीम (सल्ल०) के एक साथी कहते हैं कि एक बार मैं अपने एक दास को मार रहा था कि पीछे से आवाज़ आई—"सुनो, सुनो!" मुड़कर देखा तो रसूले करीम (सल्ल०) फ़रमा रहे थे कि "ऐ अबू मसऊद इसे क्षमा करो। जितना अधिकार तुम को इस दास पर है, उससे कहीं अधिक ईश्वर को तुम पर है।" मैंने कहा हुज़ूर—"यह कुसूर करता है।" फ़रमाया—"क्षमा किया करो।" मैंने पूछा—"अल्लाह के रसूल! मैं इसका कुसूर कितनी बार क्षमा किया करूँ?" आप चुप रहे। मैंने दूसरी बार और तीसरी बार फिर यही प्रश्न किया, तब आपने फ़रमाया, "प्रतिदिन सत्तर बार! अर्थात् बराबर

क्षमा ही करते रहो।'' मैं यह सुनकर काँप उठा और कहा, ''ऐ अल्लाह के रसूल! मैं ईश्वर के लिए इसे मुक्त करता हूँ।'' रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया ''यदि तुम मुक्त न करते तो ईश्वर की क़सम तुम्हें नरक-कुण्ड में जलाया जाता।'' ये थे दया और क्षमा के सागर रसूले करीम (सल्ल०)!

(3) अबू ज़र ग़फ़ारी ने, जो रसूले करीम (सल्ल०) के साथी हैं, एक बार अपने दास को गाली दे दी। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—''अबू ज़र ग़फ़ारी। तुम अभी इस्लाम से पूर्व ही वाले समय में हो। इस्लाम तुमको क्षमा करने का आदेश देता है।''

(4) अम्र बिन उमैया, जो बाद में मुसलमान हो गए, हत्या करने में बड़े बदनाम थे। उन्होंने एक बद्दू को रसूले करीम (सल्ल०) की हत्या करने के लिए नियुक्त किया। वह तलवार लेकर गया। रसूले करीम (सल्ल०) भाँप गए और फ़रमाया—''इसकी नीयत अच्छी नहीं।'' अतः उसकी तलाशी ली गई तो उसके पाजामें से तलवार निकली। इससे संगीन अपराध और क्या हो सकता है? लोग उसको सज़ा देना चाहते थे। लेकिन जब उस दुष्ट ने गिड़गिड़ा कर क्षमा-याचना की तो आपने उसे क्षमा कर दिया।

(5) एक बार कुरैश पर आक्रमण करने की तैयारियाँ हो रही थीं। एक सहाबी हातिब ने सारा रहस्य प्रकट करने के लिए कुरैश को पत्र लिख भेजा। हज़रत उमर ने पत्रवाहक को पत्र सहित पकड़ लिया। हातिब को प्राणदण्ड की सज़ा सुनाई गई; क्योंकि यह एक भारी अपराध था। किन्तु रसूले करीम (सल्ल०) ने उसे भी क्षमा कर दिया।

(6) एक बार एक युद्ध में मुसलमान अबुल बख़तरी को मारने के लिए आगे बढ़े; क्योंकि उसने मुसलमानों को बहुत तकलीफ़ें दी थीं। किन्तु रसूले करीम (सल्ल०) ने लोगों को रोक दिया और उसको क्षमा कर दिया।

(7) बद्र के बन्दियों में एक व्यक्ति सुहैल बिन अम्र अति वाक्-पटु था और प्रायः जनसभाओं में रसूले करीम (सल्ल०) के विरुद्ध जोशीले भाषण करके घृणा के बीज बोया करता था। वह पकड़ लिया गया तो हज़रत उमर ने उसके दो दाँत उखाड़ डालने का प्रस्ताव दिया ताकि वह फिर भाषण न दे सके। हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) को सूचना मिली तो आपने मनाही कर दी और कहा ''यद्यपि मैं रसूल हूं, किन्तु यदि मैं किसी का कोई अंग बिगाड़ूँगा तो ख़ुदा मेरे अंग भी बिगाड़ देगा।''

(8) एक बार किसी शत्रु ने रसूले करीम (सल्ल०) के मुख पर इतने ज़ोर से पत्थर मारा कि आपके दांत टूट गए। इस अनुचित और अत्याचारपूर्ण व्यवहार के बावजूद आपने प्रार्थना की—''हे ईश्वर! इन लोगों को क्षमा कर दे और शुद्ध बुद्धि प्रदान कर क्योंकि ये नहीं समझते कि किसके साथ और क्या कर रहे हैं।''

(9) ख़ालिद बिन वलीद ने मुसलमान होने के बाद कुछ निर्दोषों को केवल अज्ञानतावश मार डाला। रसूले करीम (सल्ल०) इस दुर्घटना का हाल सुनकर तुरंत खड़े हो गए और बड़ी बेचैनी से दोनों हाथ आसमान की ओर उठाकर फ़रमाने लगे—"हे ईश्वर ख़ालिद ने जो कुछ किया मैं उससे निर्लिप्त हूँ।" फिर आप ने हज़रत अली को भेजकर मृतकों और उनके मवेशियों की हानि का मूल्य उनके उत्तराधिकारियों को दिलाया।

(10) जब आप ने मक्का से हिजरत (देश-त्याग) की, तो पूरे 13 वर्ष आपको बाहर रहना पड़ा। इस बीच आपको जो अत्याचार सहन करने पड़े, वे बयान से बाहर हैं। जब आप दीर्घ काल के बाद मक्का वापस आए तो एक दिन आप भाषण देने के लिए मिम्बर पर खड़े हुए और सारे ही दुश्मनों को क्षमा कर दिया और फ़रमाया—"किसी के सिर आज से कोई दोष नहीं; सब मुक्त एवं स्वतन्त्र हैं।" इस क्षमादान का इतना प्रभाव हुआ कि सैकड़ों स्त्री-पुरुष, यहाँ तक कि बहुत-से दुश्मन भी, मुसलमान हो गए। शत्रुओं के नेता अबू सुफ़ियान, उनकी पत्नी और पुत्र भी इस्लाम पर प्राण निछावर करनेवाले बन गए।

(11) ग़ौरस बिन हारिस ने नंगी तलवार से हज़रत रसूल करीम (सल्ल०) पर आक्रमण किया और कहा—"बोलो, इस समय तुमको मुझसे कौन बचा सकता है?" आपने तेज़पूर्ण स्वर में कड़क कर उत्तर दिया—"अल्लाह!" यह सुनकर उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी। आप ने वही तलवार उठाकर उसे ललकारा— "बोल! अब तुझे मुझसे कौन बचा सकता है?" उसने तुरंत उत्तर दिया—"आप।" आपने कहा, "तुम भी कहो—अल्लाह।" और उसे छोड़ दिया।

यह है इस्लाम की शान, यह है इस्लाम का उच्च आदर्श; यह है पैग़म्बरे इस्लाम की उदारता एवं विशाल हृदयता।

हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) के कुछ अन्य प्रवचन भी नीचे लिखे जा रहे हैं। आप ने फ़रमाया—

(1) जो व्यक्ति प्रतिशोध की शक्ति रखता हो और क्षमा कर दे, वह ईश्वर के निकट बहुत सम्मान पाएगा।

(2) जो व्यक्ति किसी अत्याचार-पीड़ित की सहायता को जाता है, ईश्वर उसके नाम 100 नेकियां लिख देता है।

(3) जो व्यक्ति एक अत्याचारी को अत्याचारी जानते हुए उसकी सहायता करता है, वह इस्लाम की परिधि से बाहर हो जाता है।

(4) यह न कहो कि जो लोग हमारे साथ अच्छा व्यवहार करेंगे, हम भी उनके

साथ अच्छा व्यवहार करेंगे; यदि वे हमें कष्ट देंगे तो हम भी कष्ट देंगे, बल्कि यह संकल्प करो कि यदि लोग तुम्हारे साथ सद्व्यवहार करेंगे तो तुम भी उनके साथ सद्व्यवहार करो और यदि वे कटुव्यवहार करेंगे तो तुम उन्हें क्षमा कर दोगे।

(5) यदि तुम्हें कोई बुरा कहे और तुम में दोष निकाले तो तुम बदले में उसमें दोष न निकालो, यद्यपि तुम्हें उसके दोषों का पता हो।

(6) हर अत्याचार-पीड़ित की सहायता करो, चाहे वह मुसलमान हो या किसी अन्य धर्म का हो।

(7) जो व्यक्ति दुश्मनी छोड़ देगा, उसके लिए स्वर्ग के बीच में महल तैयार होगा।

(8) जो व्यक्ति घायल हो जाए और अपने आक्रमणकारी को क्षमा कर दे, ईश्वर उसका सम्मान बढ़ाएगा और उसके पाप में कमी कर देगा।

तो ऐ मेरे भाइयो! यदि आप सच्चे मानव या सच्चे मुसलमान बनना चाहते हैं तो इन आदेशों का पालन कीजिए।

इस्लाम में पड़ोसी के अधिकार

इस्लाम में पड़ोसी के साथ अच्छे व्यवहार पर बड़ा बल दिया गया है। परन्तु इसका उद्देश्य यह नहीं है कि पड़ोसी की सहायता करने से पड़ोसी भी समय पर काम आए, अपितु इसे एक मानवीय कर्त्तव्य ठहराया गया है, इसे आवश्यक क़रार दिया गया है और यह कर्त्तव्य पड़ोसी ही तक सीमित नहीं है बल्कि किसी साधारण मनुष्य से भी असम्मानजनक व्यवहार न करने की ताकीद की गई है। पवित्र क़ुरआन में लिखा है—

"और लोगों से बेरुख़ी न कर।" —क़ुरआन, 31:18

पड़ोसी के साथ अच्छे व्यवहार का विशेष रूप से आदेश है। न केवल निकटतम पड़ोसी के साथ, बल्कि दूर वाले पड़ोसी के साथ भी अच्छे व्यवहार की ताकीद आई है। सुनिए—

"और अच्छा व्यवहार करते रहो—माता-पिता के साथ, सगे-सम्बन्धियों के साथ, अबलाओं के साथ, दीन-दुखियों के साथ, निकटतम और दूर के पड़ोसियों के साथ भी।" —क़ुरआन, 4:36

पड़ोसी के साथ अच्छे व्यवहार के कई कारण हैं—एक विशेष बात यह है कि मनुष्य को हानि पहुंचने की आशंका भी उसी व्यक्ति से अधिक होती है जो निकट हो। इसलिए उसके सम्बन्ध को सुदृढ़ और अच्छा बनाना एक महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य है ताकि पड़ोसी सुख और प्रसन्नता का साधन हो, न कि दुख और कष्ट का कारण।

पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करने के सम्बन्ध में जो ईश्वरीय आदेश अभी प्रस्तुत किया गया है उसके महत्व को पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने विभिन्न ढंग से बताया है और आपने स्वयं भी उस पर अमल किया है।

एक दिन आप अपने मित्रों के बीच विराजमान थे। उनसे फ़रमाया—"ख़ुदा की क़सम, वह मोमिन नहीं! ख़ुदा की क़सम, वह मोमिन नहीं! ख़ुदा की क़सम, वह मोमिन नहीं!" आपने तीन बार इतना बल देकर कहा तो मित्रों ने पूछा—"कौन ऐ अल्लाह के रसूल?" आपने फ़रमाया—"वह जिसका पड़ोसी उसकी शरारतों से सुरक्षित न हो।"

एक और अवसर पर आपने फ़रमाया—

"जो ख़ुदा पर और क़ियामत पर ईमान रखता है, उसको चाहिए कि अपने पड़ोसी की रक्षा करे।"

एक और हदीस में है कि आपने फ़रमाया—

"जो ईश्वर और क़ियामत के दिन पर ईमान रखता हो वह अपने पड़ोसी को कष्ट न दे।"

एक और अवसर पर आपने फ़रमाया—

"ईश्वर के निकट मित्रों में वह अच्छा है, जो अपने मित्रों के लिए अच्छा हो और पड़ोसियों में वह अच्छा है, जो अपने पड़ोसियों के लिए अच्छा हो।"

कहते हैं कि एक बार आपने अपनी सुपत्नी हज़रत आइशा (रज़ि०) को शिक्षा देते हुए फ़रमाया—

"जिबरील ने मुझे अपने पड़ोसी के महत्त्वपूर्ण अधिकारों की इतनी ताकीद की कि मैं समझा कि कहीं विरासत में वे उसे भागीदार न बना दें।"

इसका साफ़ अर्थ यह है कि पड़ोसी के अधिकार अपने निकटतम सम्बन्धियों से कम नहीं।

एक बार आपने एक साथी हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) को नसीहत करते हुए कहा—

"अबू ज़र! जब शोरबा पकाओ तो पानी बढ़ा दो और इसके द्वारा अपने पड़ोसियों की सहायता करते रहो।"

चूंकि स्त्रियों से पड़ोस का सम्बन्ध अधिक होता है; इसलिए आपने स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए विशेष रूप से कहा—

"ऐ मुसलमानों की औरतो! तुम में से कोई पड़ोसिन अपनी पड़ोसिन के उपहार को तुच्छ न समझे, चाहे वह बकरी का खुर ही क्यों न हो।"

हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) ने पड़ोसियों की खोज-ख़बर लेते रहने की बड़ी ताकीद की है और इस बात पर बहुत बल दिया है कि कोई मुसलमान अपने पड़ोसी के कष्ट और दुख से बेख़बर न रहे। एक अवसर पर आपने फ़रमाया—

"वह मोमिन नहीं जो ख़ुद पेट भर खाकर सोए और उसकी बग़ल में उसका पड़ोसी भूखा रहे।"

एक बार रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"व्यभिचार निषिद्ध (हराम) है, ईश्वर और उसके दूतों ने इसे बहुत बुरा काम कहा है। किन्तु दस व्यभिचार से बढ़कर व्यभिचार यह है कि कोई अपने पड़ोसी की पत्नी से व्यभिचार करे। चोरी निषिद्ध है, अल्लाह और पैग़म्बर ने उसे वर्जित ठहराया है, किन्तु दस घरों में चोरी करने से बढ़कर यह है कि कोई अपने पड़ोसी के घर से कुछ चुरा ले।"

दो मुसलमान स्त्रियों के सम्बन्ध में आपको बताया गया कि पहली स्त्री धार्मिक नियमों का बहुत पालन करती है किन्तु अपने दुर्वचनों से पड़ोसियों की नाक में दम किए रहती है। दूसरी स्त्री साधारण रूप से रोज़ा-नमाज़ अदा करती है किन्तु अपने पड़ोसियों से अच्छा व्यवहार करती है। हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"पहली स्त्री नरक में जाएगी और दूसरी स्वर्ग में।"

रसूले करीम (सल्ल०) ने पड़ोसी के स्वत्व (हक़) पर इतना बल दिया है कि शायद ही किसी और विषय पर दिया हो।

एक अवसर पर आपने फ़रमाया—

"तुममें कोई मोमिन नहीं होगा जब तक अपने पड़ोसी के लिए भी वही पसन्द न करे जो अपने लिए पसन्द करता है।"

अर्थात् पड़ोसी से प्रेम न करे तो ईमान तक छिन जाने का ख़तरा रहता है; यहीं पर बात ख़त्म नहीं होती, एक और स्थान पर आपने इस बारे में जो कुछ फ़रमाया वह इससे भी ज़बरदस्त है। आपने फ़रमाया—

"जिसको यह प्रिय हो कि ख़ुदा और उसका रसूल उससे प्रेम करे या जिसको ख़ुदा और उसके रसूल के प्रेम का दावा हो तो उसको चाहिए कि वह अपने पड़ोसी के साथ प्रेम करे और उसका हक़ अदा करे।"

अर्थात् जो पड़ोसी से प्रेम नहीं करता, उसका ख़ुदा और रसूल से प्रेम का दावा भी झूठा है और ख़ुदा और रसूल के प्रेम की आशा रखना एक भ्रम है। इसी लिए आपने फ़रमाया है कि क़ियामत के दिन ईश्वर के न्यायालय में सबसे पहले दो वादी उपस्थित होंगे जो पड़ोसी होंगे। उनसे एक-दूसरे के सम्बन्ध में पूछा जाएगा।

मनुष्य के सद्व्यवहार एवं कुव्यवहार की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसे वह व्यक्ति अच्छा कहे जो उसके बहुत क़रीब रहता हो। चुनांचे एक दिन आप (सल्ल०) के कुछ साथियों ने आपसे पूछा—"ऐ अल्लाह के रसूल! हम कैसे जानें कि हम अच्छा कर रहे हैं या बुरा!

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—"जब अपने पड़ोसी से तुम अपने बारे में अच्छी बात सुनो तो समझ लो कि अच्छा कर रहे हो और जब बुरी बात सुनो तो समझो बुरा कर रहे हो।"

पैग़म्बरे इस्लाम ने इस विषय में हद तय कर दी है। यही नहीं कि पड़ोसी के विषय में ताकीद की है बल्कि यह भी कहा है कि अगर पड़ोसी दुर्व्यवहार करे, तो जवाब में तुम भी दुर्व्यवहार न करो और यदि आवश्यक ही हो तो पड़ोस छोड़कर कहीं अन्य स्थान पर

चले जाओ। अतः एक बार आपके एक साथी ने आपसे शिकायत की कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरा पड़ोसी मुझे सताता है। फ़रमाया—"जाओ, धैर्य से काम लो।" इसके बाद वह फिर आया और शिकायत की। आपने फ़रमाया—"जाकर तुम अपने घर का सामान निकालकर सड़क पर डाल दो।" साथी ने ऐसा ही किया। आने-जानेवाले उनसे पूछते तो वह उनसे सारी बातें बयान कर देते। इस पर लोगों ने उनके पड़ोसी को आड़े हाथों लिया और उसे बड़ी लज्जा की अनुभूति हुई। अस्तु, वह अपने पड़ोसी को मनाकर दोबारा घर में वापस लाया और वादा किया कि अब वह उसे न सताएगा।

मेरे ग़ैर-मुस्लिम भाई इस घटना को पढ़कर चकित रह जाएंगे और सोचेंगे कि क्या सचमुच एक मुसलमान को इस्लाम धर्म में इतनी सहनशीलता की ताकीद है और क्या वास्तव में वह ऐसा कर सकता है। हाँ, निस्सन्देह इस्लाम धर्म और रसूले करीम (सल्ल०) ने ऐसी ही ताकीद फ़रमाई है और इस्लाम के सच्चे अनुयायी इसके अनुसार अमल भी करते रहे हैं, जैसा कि ऊपर की घटनाओं से प्रकट है। अब भी ऐसे पवित्र व्यक्ति इस्लाम के अनुयाइयों में मौजूद हैं जो इन सब बातों को सम्पूर्ण रूप से कार्यान्वित करते हैं, ये ऐसे लोग हैं जिन्हें सिर-आँखों पर बिठाया जाना चाहिए।

मेरे कुछ भाई इस भ्रम में रहते हैं कि पड़ोसी का अर्थ केवल मुसलमान पड़ोसी ही से है, ग़ैर-मुस्लिम पड़ोसी से नहीं। उनके इस भ्रम को दूर करने के लिए एक ही घटना लिख देना पर्याप्त होगा।

एक दिन हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) ने एक बकरी ज़ब्ह की। उनके पड़ोस में एक यहूदी भी रहता था। उन्होंने अपने घरवालों से पूछा—"क्या तुमने यहूदी पड़ोसी का हिस्सा इसमें से भेजा है; क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से मुझे इस सम्बन्ध में ताकीद पर ताकीद सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है कि हर एक पड़ोसी का हम पर हक़ है।"

यही नहीं कि पड़ोसी के सम्बन्ध में पवित्र क़ुरआन के इस पवित्र आदेश का समर्थन हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने ज़बानी फ़रमाया हो, बल्कि आपके जीवन की घटनाएँ भी इसका समर्थन करती हैं।

एक बार कुछ फल हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) के पास उपहारस्वरूप आए। आपने सर्वप्रथम उनमें से एक भाग अपने यहूदी पड़ोसी को भेजा और बाक़ी भाग अपने घर के लोगों को दिया।

मैं यह बात दावे से कह सकता हूँ कि निस्सन्देह धर्म में परस्पर मेल-मिलाप की शिक्षा मौजूद है। परन्तु जितनी ज़बरदस्त ताकीद पड़ोसी के सम्बन्ध में इस्लाम धर्म में है,

कम से कम मैंने किसी और धर्म में नहीं पाई।

निस्सन्देह अन्य धर्मों में हर एक मनुष्य को अपने प्राण की तरह प्यार करना, अपने ही समान समझना, सब की आत्मा में एक ही पवित्र ईश्वर के दर्शन करना आदि लिखा है। किन्तु स्पष्ट रूप से अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करने और उसके अत्याचारों को भी धैर्यपूर्वक सहन करने के बारे में जो शिक्षा पैग़म्बरे इस्लाम ने खुले शब्दों में दी है वह कहीं और नहीं पाई जाती।

अपने पड़ोसी से दुर्व्यवहार की जितनी बुराई रसूले करीम (सल्ल०) ने बयान फ़रमाई है और उसे जितना बड़ा पाप ठहराया है, किसी और धर्म में उसका उदाहरण नहीं मिलता। इसलिए सत्यता यही है कि पड़ोसी के अधिकारों को इस प्रकार स्वीकार करने से इस्लाम की यह शान बहुत बुलन्द नज़र आती है। इस्लाम का दर्जा इस सम्बन्ध में बहुत ऊँचा है। यह शिक्षा इस्लाम धर्म के ताज में एक दमकते हुए मोती के समान है और इसके लिए इस्लाम की जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। ऐ मुस्लिम भाई! रसूले करीम (सल्ल०) के पवित्र जीवन का पवित्र आदर्श आपके लिए पथ-प्रदर्शक दीप के समान है। इसलिए आप लोगों को अन्य धर्मावलम्बियों के लिए एक नमूना बनकर दिखाना चाहिए।

इस्लाम में पवित्र कमाई का महत्त्व

इस्लाम में पवित्र कमाई पर बड़ा ज़ोर दिया गया है और एक सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था में ऐसा होना अनिवार्य भी है। पवित्र क़ुरआन में है—

"ऐ लोगो! जो वस्तुएं धरती पर पाई जाती हैं, उनमें से अवर्जित (हलाल) और पवित्र वस्तुओं को खाओ और शैतान का अनुसरण न करो। वास्तव में वह तुम्हारा खुला शत्रु है।" —क़ुरआन, 2:168

"ऐ ईमानवालो! जो पवित्र वस्तुएं हमने तुमको प्रदान की हैं, उनमें से खाओ और अल्लाह की प्रशंसा व शुक्र करो, यदि वास्तव में तुम उसी की उपासना करनेवाले हो।" —क़ुरआन, 2:172

देखिए, ये कितने खुले और स्पष्ट ईश्वरीय आदेश हैं। किन्तु आज हम इन्हें कितनी बुरी तरह ठुकरा रहे हैं? आज हम दूसरों के माल पर हाथ साफ़ करना, लूट-खसोट का धन प्राप्त करना उचित समझ रहे हैं। रसूले करीम (सल्ल०) ने तो इस बारे में इतना ज़ोर दिया है कि मनुष्य पढ़कर चकित रह जाता है। आप पवित्र कमाई को अत्यन्त महत्व देते थे। इस विषय में आपके आदेश अनगिनत हैं। इन आदेशों का एक-एक शब्द पढ़ने के योग्य है। आप फ़रमाते हैं—

(1) अपने हाथ से प्राप्त की हुई जीविका से अच्छी कोई जीविका नहीं है।

(2) जो व्यक्ति पवित्र जीविका खाए, मेरे मार्ग पर चले और जन-साधारण को अपनी बुराइयों से सुरक्षित रखे वह स्वर्ग में जाएगा।

(3) अल्लाह पवित्र धन के अतिरिक्त किसी धन को स्वीकार नहीं करता।

(4) पवित्र कमाई का दान चाहे एक खजूर ही हो तो अल्लाह उसको दाएं हाथ से ग्रहण करता है और दान देनेवाले को इस प्रकार बढ़ाता है, जैसे कोई आदमी अपने बछड़े को बढ़ाता है। यहाँ तक कि वह पहाड़ के बराबर हो जाता है।

(5) जो व्यक्ति अपने खाने के लिए, भीख माँगने से बचने के लिए और अपने बाल-बच्चों के पालन-पोषण के लिए और अपने पड़ोसी के साथ उपकार करने के लिए पवित्र कमाई उचित रूप से प्राप्त करे तो वह क़ियामत के दिन अल्लाह से इस अवस्था में भेंट करेगा कि उस व्यक्ति का चेहरा चौदहवीं रात के चाँद के समान चमकता होगा।

(6) आपके साथी अबू हुरैरा (रज़ि०) का बयान है कि एक बार रसूले करीम

(सल्ल०) ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे इन पाँच बातों का उपदेश दिया—

(क) अपवित्र माल खाने से बचो। इससे तुम सबसे बड़े अल्लाह के उपासक बन जाओगे।

(ख) जो अल्लाह से प्राप्त हो, उस पर सन्तुष्ट रहो। इससे तुम सबसे ज़्यादा मालदार हो जाओगे।

(ग) अपने पड़ोसी के साथ सद्व्यवहार करो, तुम मोमिन हो जाओगे।

(घ) दूसरे लोगों के लिए वही पसन्द करो जो तुम अपने लिए पसन्द करते हो तो तुम मुस्लिम हो जाओगे।

(च) अधिक हंसा न करो; अधिक हंसना दिल को बुझा देता है।

(7) हज़रत रसूले करीम (सल्ल०) से पूछा गया कि सन्यास क्या है? तो आपने फ़रमाया कि पवित्र जीविका प्राप्त करना और आशाओं को कम करना।

(8) रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुसलमान केवल इसी प्रकार सदाचारी, संयमी और धार्मिक हो सकता है जब वह उन वस्तुओं को हाथ न लगाए जिनके बारे में उसे अपवित्र होने की आशंका हो।

(9) रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—"मकानों के निर्माण में वर्जित ढंग से प्राप्त धन न लगाओ, क्योंकि वह बुराई एवं विनाश का आधार है।"

(10) जो व्यक्ति अपवित्र धन अपने घर लाएगा, वह उसके बाल-बच्चों की हानि का कारण होगा और कोई पुरुष उस हानि की पूर्ति नहीं कर सकता। यदि एक मनुष्य के अच्छे कर्म पहाड़ के बराबर होंगे तो भी उसे क़ियामत (कर्मफल) के दिन तराज़ू के पास ठहराकर पूछेंगे कि तूने अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण कहां से किया? उसकी इस बात पर पकड़ की जाएगी और उसके समस्त पुण्य-कर्म अकारथ चले जाएंगे। उस समय फ़रिश्ता आवाज़ देगा कि देखो यह वह व्यक्ति है कि उसके परिवारवाले उसके समस्त पुण्य-कर्म खा गए और यह स्वयं पकड़ लिया गया।

(11) क़ियामत के दिन किसी मनुष्य से सर्वप्रथम उसके परिवारवाले झगड़ेंगे और कहेंगे कि हे अल्लाह! इसका और हमारा न्याय कर। इसने हमको वर्जित (हराम) भोजन खिलाया। हम इस बात को नहीं जानते थे; जो बातें हमको सिखाने की थीं, वह हमको नहीं सिखाईं; हम मूर्ख रह गए। इसलिए जो व्यक्ति पवित्र विरासत न पाए या पवित्र जीविका न कमाए, उसे विवाह ही न करना चाहिए, यदि वह अपने आपको व्यभिचार से सुरक्षित रख सके।

(12) प्रतिदिन प्रातः समय उठकर अपने दिल में संकल्प कर लिया करो कि

आज घर से इस विश्वास के साथ जाऊंगा कि पवित्र जीविका कमाकर लाऊंगा, ताकि लोगों की मोहताजी और उनकी आवश्यकता न रहे और इतना ईश्वर-भय और अवसर प्राप्त हो कि अल्लाह की उपासना में लीन हो सकूं। और यह संकल्प करके बाहर जाओ कि आज लोगों के साथ दया, सज्जनता, क्षमा और सत्यता से काम लूंगा और लोगों को अच्छे काम करने का आदेश और बुरे कामों से बचने की ताकीद करूंगा।

(13) जो व्यक्ति चालीस दिन तक निरन्तर पवित्र जीविका खाए, जिसमें अपवित्र कमाई तनिक भी सम्मिलित न हो, अल्लाह उसके हृदय को अपनी ज्योति से परिपूर्ण कर देता है और ज्ञान के स्रोत उसकी अन्तरात्मा में जारी कर देता है और लौकिक लोभ उसके मन से निकाल देता है।

(14) एक बार आपके एक साथी ने आपसे निवेदन किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! आप मुझे ऐसा तरीक़ा बता दें कि मैं जिस उद्देश्य से अल्लाह से प्रार्थना करूं, मेरी वह प्रार्थना स्वीकार हो जाए। आपने फ़रमाया—"पवित्र जीविका खाओ, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हो जाया करेगी।"

(15) रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—"बहुत-से लोग ऐसे होते हैं कि उनका खाना-कपड़ा अपवित्र धन का होता है। फिर भी वह हाथ उठा-उठाकर प्रार्थना करते हैं। किन्तु इसी लिए उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं होती।" आपने यह भी फ़रमाया कि अल्लाह का एक दूत बैतुल मक़्दिस में है, जो हर रात पुकारता है कि जो व्यक्ति अपवित्र माल खाएगा, अल्लाह उसकी न फ़र्ज़ उपासना स्वीकार करेगा न सुन्नत।

(16) रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—"जो व्यक्ति इसका विचार नहीं रखता कि माल कहां से कमाता है तो अल्लाह भी इसकी परवाह नहीं करेगा कि उसे किधर से नरक में डाल दे। जो मांस शरीर में अपवित्र माल खाने से बढ़ेगा वह नरक में जलाया जाएगा।

(17) रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—"उपासना के दस भाग हैं। इनमें से नौ भाग पवित्र जीविका की प्राप्ति का संकल्प है। जो व्यक्ति पवित्र जीविका ढूंढ़ते-ढूंढ़ते रात को अपने घर खाली हाथ वापस जाता है, वह जब सोता है तो उसके सभी पाप माफ़ कर दिए जाते हैं और जब प्रातः उठता है तो अल्लाह उससे प्रसन्न होता है।"

(18) रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—"अल्लाह फ़रमाता है कि जो व्यक्ति अपवित्र माल से बचता है, मुझे लज्जा आती है कि उससे हिसाब लूँ।"

(19) रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—"जो व्यक्ति अपवित्र माल खाएगा यदि दान देगा तो वह स्वीकार न होगा और यदि रख छोड़ेगा तो नरक के द्वार तक वह

उसका पाथेय (सफ़र का ख़र्च) होगा।''

(20) रसूले करीम (सल्ल०) के प्रथम उत्तराधिकारी हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने अपने एक ग़ुलाम के हाथ से दूध का शर्बत पिया। जब पी चुके तो मालूम हुआ कि शर्बत अपवित्र धन से बनाया गया था। आपने मुंह में इतनी गहरी उंगली डालकर क़ै की कि उसके कष्ट के कारण आपके प्राण जाने की आशंका हो गई। इतना करने के बाद भी आपने प्रार्थना की कि ऐ ख़ुदा, मैं तेरी पनाह माँगता हूँ इस शर्बत के उस भाग से जो चेष्टा करने के बाद भी क़ै के द्वारा नहीं निकला और मेरे पेट में बाक़ी रह गया। इसी प्रकार आपके दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) ने भी एक बार ऐसा ही किया था, क्योंकि लोगों ने उन्हें दान में मिला दूध पिला दिया था। उन्होंने भी उसे क़ै करके निकाल दिया। आपके पुत्र अब्दुल्लाह कहते हैं कि यदि तू इतनी नमाज़ पढ़े कि तेरी पीठ टेढ़ी हो जाए, इतने रोज़े रखे कि बाल की तरह बारीक और दुबला हो जाए; लेकिन यदि तू अपवित्र जीविका से नहीं बचेगा, तो ऐसे रोज़ों और नमाज़ से तुझे कोई लाभ नहीं होगा।

ऐ मेरे भाई! जब मैं इस विषय पर लिख रहा था और रसूले करीम (सल्ल०) के एक-एक कथन को नक़ल कर रहा था तो विश्वास करो मेरा दिल भय से कांप रहा था, क्योंकि मैं समझता था कि इस्लाम में पवित्र जीविका की जितनी कड़ाई से ताकीद की गई है, उसके सम्बन्ध में मुझ में या मेरे भीतर बहुत-सी त्रुटियाँ हैं तो क़ियामत के दिन मेरा क्या हाल होगा। मैंने यह अध्याय लिखकर अल्लाह से यह प्रार्थना की कि ऐ मेरे पालनकर्ता! तू मुझ पर इतनी दया कर कि मैं वास्तव में अपवित्र जीविका से उतना ही बचूं जितनी इस्लाम में ताकीद है।

धार्मिक पथ-प्रदर्शक के गुण

आज के युग में धार्मिक पथ-प्रदर्शक (नेता) दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो हमें हमारी मंज़िल तक पहुँचाते हैं और दूसरे वे जो हमें पथ-भ्रष्ट करके विनाश के गर्त में गिरा देते हैं।

कौन-सा व्यक्ति धार्मिक पथ-प्रदर्शक बनने के योग्य होता है, इसके सम्बन्ध में रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

''पथ-प्रदर्शन के योग्य सबसे उचित और बेहतर वह व्यक्ति है जो इस पद को बहुत बुरा समझे, फिर भी उसे उसपर नियुक्त किया जाए।''

अबू मूसा कहते हैं कि मैं और मेरे दो चचेरे भाई रसूले करीम (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए। उनमें से एक ने कहा— ''ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह ने जो शासन-पद आप के सुपुर्द किए हैं उनमें से किसी पर हमें अधिकारी नियुक्त कर दीजिए।'' दूसरे ने भी ऐसा ही कहा। रसूले करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया—''ख़ुदा की क़सम! यह पद हम उस व्यक्ति को कदापि नहीं देते जिसे इसकी इच्छा हो या वह इसके लिए प्रार्थना करे।''

इस विषय में यह है रसूले करीम (सल्ल०) की कसौटी! रसूले करीम (सल्ल०) एक महान् पथ-प्रदर्शक थे और जिसने आप के पवित्र जीवन की घटनाएँ पढ़ी हैं, वह चकित रह जाता है कि आप कितने बड़े त्यागी थे! और कितना सरल जीवन व्यतीत करते थे और आपके मन में सेवा का कितना निःस्वार्थ भाव था।

आप का जन्म एक ग़रीब परिवार में हुआ। आप के पिता आप के जन्म के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे और जो माल उन्होंने छोड़ा वह दो-चार ऊंट कुछ बकरियां और एक दासी थी।

मक्का में रहनेवाले इस्लाम के विरोधियों ने इस्लाम के प्रचार से रोकने के लिए आप को बड़े-बड़े कष्ट दिए, विभिन्न प्रकार के प्रलोभन भी दिए, धन आदि भी पेश किए, राज्याधिकार और शासन भी देना चाहा; विवाह के लिए सुन्दर स्त्रियां भी भेंट करनी चाहीं; किन्तु आपने इन सारी वस्तुओं को ठुकरा दिया और कहा—

''मैं सत्य-पथ से तनिक भी विमुख नहीं हो सकता, चाहे तुम मेरे एक हाथ पर सूर्य और दूसरे हाथ पर चांद भी रख दो। जब तक मुझे ईश्वर का आदेश न मिले या मेरी मौत आकर मेरी ज़ुबान बन्द न कर दे, मैं इस्लाम का प्रचार नहीं छोड़ सकता।''

जब इस्लाम चारों ओर फैल गया तो आप के पास हज़ारों रुपये नक़द और हज़ारों

का माल आता था। किन्तु आप उसमें से अपने लिए एक फूटी कौड़ी भी नहीं रखते थे और अत्यन्त दीनता का जीवन व्यतीत करते थे। आपकी पत्नी हज़रत आइशा (रज़ि०) बताती हैं कि ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक सप्ताह तक लगातार हमारे यहाँ दोनों समय चूल्हा जला हो। हमें प्राय: उपवास की नौबत आती ही रहती थी और बहुधा लगातार घर में आग न जलती थी और गेहूँ की रोटी हमें बहुत कम मिलती थी, बिना छने जौ के आटे की रोटी भी कभी पेट भर न मिली।

इब्ने मसऊद कहते हैं कि आप खजूर की चटाई पर सोते थे, घर का सारा काम स्वयं करते थे; कपड़े में पैबन्द लगा लेते थे; घर में झाड़ू दे लेते थे; बकरियों का दूध दूह लेते थे; बाज़ार से सौदा-सुलुफ़ ले आते थे और जूते की मरम्मत तक अपने ही हाथों से कर लेते थे। दासों और दीनजनों के साथ बैठकर खाना खा लेते थे; जब आप अपने साथियों के बीच बैठते तो कभी कोई विशेष स्थान ग्रहण न करते।

आप के दास हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि एक दिन मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ तो देखा कि आपके पेट पर कसकर कपड़ा बंधा हुआ था। कारण पूछने पर एक व्यक्ति ने बताया कि भूख के कारण ऐसा कर रखा है। हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि जब रसूले करीम (सल्ल०) का स्वर्गवास हुआ, उस समय आपके घर में कुछ सेर जौ के अतिरिक्त कुछ न था और आप की ज़िरह बक्तर गिरवी रखी हुई थी।

ये हैं धार्मिक पथ-प्रदर्शक के गुण! यह है इस्लाम के संस्थापक के पवित्र जीवन की एक झलक! आपके बाद आपके जो उत्तराधिकारी ख़लीफ़ा हुए और जिन्होंने इस्लाम-धर्म को चार-चाँद लगाए, उनका जीवन भी स्वार्थ-रहित था। जो पथ-प्रदर्शक धार्मिक शिक्षा को पीठ पीछे डालकर स्वार्थपरता और पदलोलुपता से काम लेते हैं और धन बटोरते हैं, उनके सम्बन्ध में क़ुरआन का आदेश सुनिए—

''लोगों को (संसार की) प्रिय वस्तुएं अच्छी प्रतीत होती हैं— (उदाहरणत:) स्त्रियाँ, संतान, सोने-चाँदी के ढेर, क़तारों में खड़े घोड़े, चौपाये और खेतियाँ; किन्तु ये सब संसार में रहनेवाली (नश्वर) वस्तुएं हैं और ईश्वर ही के पास सदा बाक़ी रहनेवाला अच्छा ठिकाना है।''

—क़ुरआन, 3:14

एक और अवसर पर उन लोगों को ईश्वर की ओर से अत्यन्त भयंकर यातना की सूचना दी गई है जो धन जमा करके लखपति और करोड़पति कहलाने के इच्छुक होते हैं और उस धन को धार्मिक और जनसेवा के कार्यों में ख़र्च नहीं करते, जो हर समझदार व्यक्ति के लिए विचारणीय और अमल करने के योग्य है। फ़रमाया गया—

''जो लोग सोना-चांदी जमा करके रखते हैं और उनको ईश्वर के मार्ग में ख़र्च

नहीं करते तो आप उनको पीड़ाजनक दण्ड का शुभ समाचार सुना दीजिए जो उन्हें उस दिन दिया जाएगा। उस धन को नरक-अग्नि में तपाया जाएगा, फिर उससे उन लोगों के माथों और उनकी पीठों को दाग़ा जाएगा और कहा जाएगा कि यही है वे वस्तुएं जिनको तुम ने अपने लिए एकत्रित किया था।''

एक बार कुरआन का यह अंश मैंने अपने एक मित्र को एक वार्तालाप के बीच सुनाया तो वह कहने लगा—''अब कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि हम सोना-चांदी नहीं, बल्कि काग़ज़ के नोट जमा करते हैं, अगर उनको तपाया जाएगा तो वे तुरन्त जल जाएंगे।''

मैंने जवाब दिया—''वहाँ नोट भी सिक्कों में परिवर्तित कर दिए जाएंगे और उनको तपा कर उनसे दाग़ा जाएगा।''

इन वर्जित साधनों और अपवित्र गठजोड़ से रुपये जमा करनेवालों को यह दुआ याद रखनी चाहिए जो रसूले क़रीम स्वयं अपने लिए मांगा करते थे—

''हे ईश्वर! मुझे धनहीन जीवित रख और धनहीनों के साथ ही मुझे संसार में रख और क़ियामत में मुझे धनहीनों के साथ ही उठाना।''

एक बार यह दुआ सुनकर आपकी पत्नी हज़रत आइशा (रज़ि०) ने प्रश्न किया, ''ऐ अल्लाह के रसूल! ऐसा क्यों?'' तो आपने फ़रमाया—''इसलिए कि धनहीन धनवानों से पहले जन्नत में जाएंगे।'' फिर कहने लगे—''ऐ आइशा! किसी मांगनेवाले को अपने द्वार से निराश न फेरो, चाहे उसे खजूर का एक टुकड़ा ही दे दो। ऐ आइशा! ग़रीबों से प्रेम करो, क्योंकि जो ग़रीबों को अपने निकट रखेगा उसे ईश्वर अपने निकट रखेगा।''

जो सच्चे पथ-पदर्शक हैं वे लोगों को कभी पथभ्रष्ट नहीं करते, वे उनको सदा सीधे मार्ग पर चलाने की चेष्टा करते हैं; उन्हें हमेशा मानवता के पथ पर अग्रसर करते हैं। उन्हें उस कार्य की ओर सचेष्ट करते हैं, जिसमें उनकी भलाई हो। ऐसे नेता एवं पथ-प्रदर्शक स्वार्थपरता से कोसों दूर होते हैं। वे स्वयं भी ऐसे कार्य करते हैं, जिनसे लोगों का भला हो और अपने भाइयों को भी ऐसे ही कार्य करने का परामर्श देते हैं। वे सत्यवादिता के अवसर पर सच बोलने में संकोच नहीं करते। वे सच बोलने से इस कारण नहीं रुकते कि उनसे कोई अपना नाराज़ हो जाएगा।

ऐसे ही पथ-प्रदर्शक राष्ट्र के लिए गर्व-योग्य होते हैं। वही जनसाधारण का वास्तविक पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। ऐसे पथ-प्रदर्शक आज भी मौजूद हैं, किन्तु स्वार्थी नेताओं ने जनसाधारण की मनोवृति को इतना दूषित कर दिया है कि वे बुद्धिमानी की बात सुनने को तैयार ही नहीं होते; वे ऐसी ही बात सुनना चाहते हैं जिससे झगड़े फैलें; दंगे,

फ़साद और रक्तपात हों। परन्तु लोगों को समझना चाहिए कि ऐसे स्वार्थी नेताओं का गुमराही में डालनेवाला भाषण उन्हें पतन के मार्ग में ले जानेवाला है।

1946 ई० में जब देश में साम्प्रदायिकता का बड़ा ज़ोर था, दो नेताओं के भाषण का संक्षिप्त अंश देना हम उचित समझते हैं, जिन्हें लाला काशीराम ने अपने इस लेख के अन्त में दिया है और जो आज के दूषित वातावरण में भी हमारे लिए ज्योति-समान है।

(अनुवादक)

सर जफ़रुल्लाह खां ने 9-6-46 ई० को एक विद्यालय में नवयुवकों के सामने भाषण देते हुए कहा—

> "धर्म वह वस्तु है जो ईश्वर और मनुष्य के साथ ठीक सम्बन्ध स्थापित करने के नियम सिखाता है। किन्तु दुर्भाग्यवश लोगों ने इसे दंगे और उपद्रव का कारण बना लिया है। हमें इनकी ग़लत बातों पर न चलना चाहिए।... मानवता और भद्रता की मांग है कि हम ईमानदारी और सदाचार से अपने जीवन-स्तर को ऊंचा उठाएं और ईश्वर-चिन्तन एवं आत्मिकता को न भूलें। जैसे ही कोई व्यक्ति सत्य की खोज में लगेगा, उसके दिल से घृणा-द्वेष सब मिट जाएँगे। इसी प्रकार आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त करके भारत दूसरे देशों का पथ-प्रदर्शक बन सकता है। मुझे विश्वास है कि नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन का यह पद भारत ही प्राप्त करेगा, यदि वह उपर्युक्त सत्य-मार्ग पर चलेगा।"

एक और महान् व्यक्ति के विचार आपके समक्ष रखना चाहता हूँ। वे हैं हैदराबाद के शासक मीर उस्मान अली ख़ां। उन्होंने अपने भाषण में जिन विचारों को व्यक्त किया है यदि हम सब इसी विचार के बन जाएं तो इस देश की नौका पार लगने में तनिक भी देर न लगे।

17-6-46 ई० को निज़ाम हैदराबाद ने अपना लेख प्रकाशित किया, प्रस्तुत है उस लेख का निम्नलिखित अंश—

> "भारतीय इतिहास के इस क्रांति के समय में प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह भारत को इस प्रकार के अत्याचार से बचाने की पूरी चेष्टा करे और ऐसे कामों से विरक्त रहे जो आत्महत्या के समान हैं, जिनसे उसकी अपनी और दूसरों की दृष्टि में अपमान होता है।
>
> मैं एक शासक के रूप में इस नाज़ुक समय में अपने देशवासियों से कुछ शब्द कहना अपना कर्तव्य समझता हूँ। विशेषकर उनसे जो इस देश के उत्तर में रहते हैं और जहाँ बड़ा नर-संहार हो रहा है, चाहे हमारा धर्म कुछ हो,

चाहे हमारे राजनीतिक सिद्धान्त कैसे ही हों, जो रक्तपात हुआ है, उससे हर एक के मन में अतिभय, त्रास एवं निराशा की लहर दौड़ गई है। जिन लोगों ने यह पागलपन किया है वे भूल जाते हैं कि जो सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदाय को हानि पहुंचाता है, वह इससे अधिक अपने सम्प्रदाय को और पूरे देश को हानि पहुंचाता है। इस बात को भी लोग भूल जाते हैं कि ईश्वर उन लोगों को कभी क्षमा नहीं करता जो कि निर्दोष जनों और अबला स्त्रियों की हत्या करते हैं।''

हम को ऐसे नेक और ईश्वर से डरनेवाले नेताओं की ज़रूरत है जो हमारा नेतृत्व करके हमारे हर प्रकार के कष्टों का निवारण करें, न कि उनकी जो हमें अपनी स्वार्थपरता और बुद्धिहीनता से कष्टों और बुरी परिस्थितियों में फंसाए। जब नेता ही ग़लत पथ-प्रदर्शन करेंगे और वह भी जानते-बूझते तो जनसाधारण की बात ही और है।

रसूले करीम (सल्ल०) ने इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट आदेश दिए हैं, जिनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं, इन्हें हर समय सामने रखना चाहिए—

(1) जो लोगों पर अत्याचार करते हैं और देश में अकारण उपद्रव फैलाते हैं, उनको परलोक में कष्टदायक यातना दी जाएगी।

(2) वह ननुष्य कभी स्वर्ग में न जाएगा जिससे उसका पड़ोसी सुरक्षित एवं भय-रहित न हो।

(3) यदि तू अपने पड़ोसी से अच्छा व्यवहार करे, तब तू मोमिन बन सकता है। यदि तू सभी लोगों से ऐसा ही प्रेम करे, जैसा कि स्वयं अपने से करता है तो इससे तू मुसलमान बन सकता है।

वही नेता और पथ-प्रदर्शक सम्मान-योग्य हैं जो रसूले करीम (सल्ल०) के आदेशों का पालन करें जो इसके विरुद्ध काम करें वे नेता कहलाने योग्य नहीं।

अपने धर्मवालों से निवेदन

मैं अपने सहधर्मी हिन्दू भाइयों से प्रायः सुनता हूँ कि मुसलमान भाई ही हर अवसर पर दंगे-उपद्रव आरम्भ करते हैं और जब इनसे इसका कारण पूछा जाता है तो वे कहते हैं कि मुसलमानों की धार्मिक शिक्षा उनको अन्य धर्मवालों पर अत्याचार करने का आदेश देती है।

इसलिए मैं इस सम्बन्ध में भी कुछ शब्द लिखना आवश्यक समझता हूँ।

इस्लाम धर्म के विषय में हिन्दू भाइयों का यह विचार कि वह अत्याचार का समर्थक है, उचित नहीं। मैंने अपनी इस पुस्तक में और इससे पहले की पुस्तक 'इस्लाम उदारतापूर्ण ईश्वरीय धर्म' में इस्लाम की शिक्षा का सार एवं निचोड़ जगह-जगह दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि हर दूसरे धर्म के समान इस्लाम भी सत्यता, सदाचार, सद्व्यवहार, दया, क्षमा, शान्ति, परस्पर प्रेम, सेवा, त्याग आदि का आदेश देता है। यदि कोई मुसलमान इसके विरुद्ध आचरण करता है तो इसमें इस्लाम का कोई दोष नहीं, दोष स्वयं उसका है। अच्छे-बुरे लोग सभी धर्मों में होते हैं और हो सकते हैं।